डॉ. अम्बेडकर जयंती विशेषांक

वर्ष : 12 अंक : 4 अप्रैल, 2014 ₹ 20

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

भारत का संविधान

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 12 ★ अंक : 04 ★ अप्रैल 2014 ★ कुल पृष्ठ : 72

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मण्डल
डॉ आर.बी. लांगायन
अजीत सिंह, डॉ. शोभाश्री टाडी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 **जनपथ, नई दिल्ली**-110001
फोन 011-23320588, 23320589, 23357625,
मोबाईल : 07503210124 **फैक्स :** 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com
बेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in
(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

आवरण चित्रः संदीप बौद्ध के सौजन्य से

प्रकाशक व मुद्रक **विनय कुमार पॉल**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों/रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों/रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

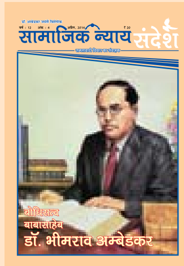

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर	सुधीर हिलसायन	3
❖ पुस्तक अंश/गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर		4–9
❖ आज के प्रश्न और बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर	अरविन्द कुमार सम्बल	10–13
❖ सामाजिक परिवर्तन के महानायक बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर	भावना सरोहा	14–15
❖ आधुनिक भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में डॉ. अम्बेडकर का योगदान	संजय कुमार एवं डॉ. जुगल किशोर	16–19
❖ बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक न्याय	निलीमा के ताकसांडे	20–21
❖ संविधान के कुछ पहलुओं पर एक नजर	डॉ. एस.एल. धनी	22–25
❖ डॉ अम्बेडकर की आरक्षण की अवधारणा	डॉ देवानंद कुंभारे	26–30
❖ ग्राम-स्वराजः गांधी बनाम डॉ. अम्बेडकर	डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'	31–32
❖ भारत में जातियाँ : बाबासाहेब की जुबानी एक टिप्पणी	संजीव कुमार	35–38
❖ दलित साहित्य पर डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव	नितिका गुप्ता	39–41
❖ डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व का असर	प्रीता हरित	42–44
❖ डॉ. अम्बेडकर और फूले की शिक्षा का असर	रजनीश कुमार अम्बेडकर	45–48
❖ भारतीय समाज के क्रांति सूर्य : ज्योतिबा फूले	डॉ. जयप्रकाश कर्दम	49–54
❖ भारतीय इतिहास में नारी की सामाजिक स्थिति और डॉ. अम्बेडकर का योगदान	कपिल गौतमराव मून	55–58
❖ दलित साहित्य में गूंजते नारी मुक्ति के प्रश्न	रजत रानी मीनू	59–63
❖ विद्रोही व्यक्तित्व व सशक्त महिला मीरा बाई	डॉ. निशा सत्यजीत	64–65
❖ कहानी/नुक्ता	संदीप नील	66–67
❖ कविताएं/मेरे शब्द, राहें, बाबासाहेब का दर्द	सुदेश तनवर	68
❖ बाबा तुम कहां हो, आ जाओ	देवी दयाल	70–71

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250

डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर *डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान*, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

सम्पादक के नाम पत्र

ज्ञानवर्धक ओर शिक्षाप्रद लेख

सम्पादक महोदय,

हमें पहली बार आपकी पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का अक्टूबर अंक देखने और पढ़ने को मिला। सम्पादकीय खूब पसन्द आयी। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर पर सभी लेख बेहद ज्ञानवर्धक और शिक्षाप्रद लगे। कहानी-'औरत जात' खूब पसन्द आयी। बच्चों का कोना भी खूब प्यारा लगा। कृपया बच्चों का कोना में बाल कहानी व कविताएं भी प्रकाशित करने की कृपा करें।

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'
गोला बाजार, गोररखपुर (उ.प्र.)

सावित्रीबाई फूले की जानकारी

सम्पादक महोदय,

सामाजिक न्याय संदेश पत्रिका में मैंने सावित्रीबाई फूले पर एक लेख पढ़ा, इससे पहले मुझे सावित्री बाई फूले के बारे में जानकारी नहीं थी।

वास्तव में सावित्री बाई फूले भारतीय नारी समाज में क्रांति लायी हैं। वह पहली महिला शिक्षिका, पहली छात्रावास वार्डन बनी इससे पहले भारतवर्ष में कोई महिला पढ़ी ही नहीं थी। चाहे किसी भी जाति वर्ण या धर्म की हो, इस तरह सावित्री बाई फूले ने मिथकों, रूढ़िवादिता व परम्परा को तोड़ नई मिशाल हमारे लिए पेश की। इस तरह से हमें पत्रिका में कई अन्य महत्वपूर्ण जानकारियां मिली। सम्पादक जी को हार्दिक धन्यवाद व शुभकामनाएं ।

सिंधू यादव
चकधरना, ईशापुर, जिला आजमगढ़ (उ.प्र.)

भ्रांतियां दूर हुईं

सम्पादक महोदय,

मुझे समाज के बारे में हमेशा भ्रामक जानकारी मिलती रही। मेरे कुछ मित्रों ने यह कहकर प्रचारित किया कि डॉ. बी.आर. अम्बेडकर महाराष्ट्र के हैं, और शाहू जी महाराज, ज्योतिबा फूले का नाम नहीं लेना चाहिए, क्योंकि उन्होंने अच्छा काम नहीं किया, परन्तु 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका ने मुझे बहुत जागरूक किया, सारी भ्रांतियों को तोड़ा। मैं कह सकता हूँ कि इस पत्रिका के माध्यम से चेतना जागृत हुई। यथा स्थितिवादी नजरिये को समझने का नया मौका मिला और बाबासाहेब के संविधान ने भारतीयों को नई दिशा में सोचने का मौका दिया। उम्मीद करता हूँ कि आगे भी चेतना जागृत करने में पत्रिका कारगर होगी।

रवि कुमार
नई दिल्ली

उत्साह व ऊर्जा मिली

सम्पादक महोदय,

मैं विगत माह से 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका पढ़ रही हूँ, हर बार नये एवं रूचिकर आलेख से ज्ञान तो बढ़ता ही रहा है। साथ ही मुझे कुछ अटपटा सा लगता है कि आज तक इस समाज के बारे में स्कूल, कॉलेज में क्यूं नहीं बताया व पढ़ाया गया। दलित ओबीसी समाज के महापुरुषों एवं सामाजिक सुधारकों की जीवनी उनके कार्यो को पढ़ने से जो उत्साह एवं ऊर्जा मुझे मिलती है, वो आज तक स्कूल एवं कॉलेजों की पढ़ाई से नहीं मिली, धार्मिक पाखण्ड और अन्धविश्वास में चोट करने में यह पत्रिका सदैव मददगार रही है। उम्मीद करती हूँ कि आगे भी सामाजिक न्याय के लिए पत्रिका की महती भूमिका होगी।

वीणा मेश्राम
एस.एफ.एस. फ्लैट्स, मुखर्जी नगर, दिल्ली

नये भारत का निर्माण

सम्पादक महोदय,

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की विदेश में शिक्षा, जिसमें कोलम्बिया वि.वि. में प्रवेश के सौ वर्ष पूरे होने पर विशेष अंक निकाला गया था। वास्तव में इस अंक में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर कैसे धन अभाव में विदेश गये। वहां नियमित पढ़ाई कर भारत लौटकर दलित-पिछड़े व आदिवासियों के साथ ही महिलाओं के मुद्दे व भारतीय संविधान लिख नये भारत का निर्माण किया, साथ ही बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय बाबासाहेब के द्वारा विचार को प्रकाशित करने पर कोटिश बधाई।

गुलशन साहू,
जिला अस्पताल, दंतेवाड़ा (छ.ग.)

सम्पादकीय

बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर

14 अप्रैल, बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म-दिवस भारतवर्ष के वंचितों, दलितों, पिछड़ों व उपेक्षितों के लिए पर्व के रूप में नई उत्साह के साथ प्रेरणा पुंज बनकर आता है। बाबासाहेब के जन्म-दिवस के अवसर पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान संसद के प्रांगण में पुष्पांजलि समारोह आयोजित करता है, जिसमें बाबासाहेब के लाखों अनुयायी उनकी प्रतिमा पर पुष्प और माला चढ़ाकर उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन् करते हैं तथा बाबासाहेब के व्यक्तित्व एवं विचारों से प्रेरणा लेकर स्वाभिमानी जीवन व्यतीत करने और बराबरी का अपना अधिकार पाने के लिए संघर्ष का नया संकल्प लेते हैं। इस पुनीत अवसर पर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रीगण व सांसद आदि भी पुष्पांजलि अर्पित करने आते हैं। नई पीढ़ी को बाबासाहेब के जीवन-वृत्त, संघर्ष और उनके विचारों की गहराई एवं महत्ता से भलीभांति अवगत् होकर प्रेरणा लेनी चाहिये। उन्हें मालूम होना चाहिए कि देश में लोकतंत्र, समाजवादी, आर्थिक व्यवस्था, समानता का अधिकार व 'सामाजिक न्याय' सुनिश्चित करने में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण थी।

बाबासाहेब जानते थे और कहते भी थे कि उन्होंने जो आन्दोलन खड़ा किया वह वंचितों के लिए समता, आत्म-सम्मान, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में उचित भागीदारी की लम्बी लड़ाई की शुरूआत है। निश्चय ही, जो कुछ बाबासाहेब ने वंचितों व उपेक्षितों के लिए किया वह अत्यन्त कठिन तथा अपमानजनक संघर्ष और अथक प्रयास से ही संभव हुआ। देश के नीति-निर्माताओं को चाहिए था कि मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों द्वारा सामाजिक-आर्थिक न्याय का जो संकल्प संविधान में संजोया गया है उसको पूरा करने के लिए परिवर्तन व प्रगति का एक विस्तृत खाका तैयार किया जाता, उसको कार्यान्वित करने का रास्ता सुझाया जाता, व्यवस्था में जो परिवर्तन वांछित थे उन्हें निरूपित किये जाते कि, कौन सी मशीनरी, व्यक्ति और शासन-तंत्र इसे कार्यान्वित करने के लिए चाहिए।

आजादी के बाद गरीब वंचित लोगों की तरक्की का जो रास्ता खुला उससे उनके बच्चे भी शहरों व अच्छे स्थानों में दिखाई देने लगे। वंचित अपने आत्म-सम्मान की मांग करने लगे व उनकी आर्थिक स्थिति भी बदलने लगी। इस परिवर्तन से यथास्थितिवादी, शोषणवादी ताकतें चौंक गयी और उन्होंने समता, स्वतंत्रता, बन्धुता और न्याय के सिद्धान्त की व्यावहारिकता को ही चुनौती दे डाली और उन्हें परिवर्तित व समाप्त करने की मुहिम छेड़ दी। सत्ता में आसीन और राजसत्ता की छत्रछाया में पोषित हो रहे अनेक बुद्धिजीवियों व व्यक्तियों ने इन सिद्धान्तों को सीधे तो चुनौती नहीं दी, लेकिन उनकी ओर ध्यान देना ही बन्द कर दिया। निहित स्वार्थ वाली शक्तियों ने व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार व स्वार्थ को इतना बढ़ावा दिया कि लोग नये भारत के निर्माण की नींव बनने वाले सिद्धान्तों को ही भूल गये। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की आंधी चली तो नव-साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के दबाव में, किन्तु इस देश के गरीबों को बराबरी का हक दिलाने वाले इनके तथाकथित शुभचिन्तकों ने ना तो इस आंधी को रोकने की कोशिश की और ना ही उससे बचाव के लिए मजबूत चारदीवारी तैयार की जिससे गरीब वंचित और उपेक्षित उस आंधी में खड़ा रहता और आगे बढ़ता।

नई वंचित पीढ़ी के लिए तो बाबासाहेब एक सच्चे अनुकरणीय आदर्श हैं। उनकी ही जैसी, गरीबी, तिरस्कार, संविधानविद् व कठिनाईयों में पले बाबासाहेब असंख्य कष्ट सहकर किस तरह विश्व के महानतम् विद्वान, समाज-सुधारक, राजनेता, चिन्तक व क्रांतिकारी बने। उससे प्रेरणा लेकर हर वंचित अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास कर सकता है। अपने जीवन के आदर्श और मूल्य ढूंढ़ सकता है, और उन्हें पाने का प्रयत्न कर सकता है। उसके लिए आवश्यक है कि बाबासाहेब द्वारा रचित मूल साहित्य का गहराई से ध्यान व निष्ठापूर्वक अध्ययन किया जाए।

प्रतिष्ठान के महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट (सी.डब्ल्यू.बी.ए) कलेक्टेड वर्क्स ऑफ बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान बाबासाहेब के विचारों को हिन्दी सहित विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रकाशित कर जन-जन तक पहुंचाने के कार्य में लगा हुआ है।

बाबासाहेब की 123वीं जयन्ती के अवसर पर 'डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान' व 'सामाजिक न्याय संदेश' की ओर से सभी पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएँ।

सुधीर हिलसायन

(सुधीर हिलसायन)

पुस्तक अंशः बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-5

गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर

पूर्ण अधिवेशन

चौथी बैठक-9 जनवरी, 1931
मद संख्या 2

लॉर्ड जैटलैंडः जी नहीं। आप स्थानीय सरकार का क्षेत्राधिकार वापस नहीं ले सकते, क्योंकि स्थानीय सरकार को सर्वसम्मति से अपने अधिकारों में सर्वोपरि होना चाहिए, लेकिन यह निर्धारित किया जा सकता है कि इसी परिपाटी को अपनाना वांछनीय है। महोदय! इसमें वह सब आ गया, जो मैं उप-समिति के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुख्य मुद्दा यह सुनिश्चित करना है कि पुलिस अधिनियम, 1861 द्वारा महानिरीक्षक में जो शक्तियां निहित थीं, उन्हें बनाए रखा जाए और मैं इसके साथ ही अन्य कई सुझाव पेश करना चाहता हूं, जैसे किसी प्रांत में पुलिस परिषद् का गठन, जिस पर उप-समिति विचार करे।

डॉ. अम्बेडकरः यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं अपनी जानकारी के लिए एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या नोबल मारक्विस यह चाहते हैं कि महानिरीक्षक के पद को संविधि द्वारा मान्यता प्रदान की जाए या वे चाहते हैं कि पुलिस अधिनियम के अधीन जो पद हैं, उसी को जारी रहने दिया जाए? क्या वे उन्हें संविधि द्वारा ऐसे अधिकारियों के रूप में मान्यता दिलाना चाहते हैं, जिनके कुछ सांविधिक अधिकार और दायित्व हों?

लॉर्ड जैटलैंडः जी हां।

माननीय पी.सी. मित्तरः संसद की संविधि द्वारा?

लॉर्ड जैटलैंडः जी हां, वही। महानिरीक्षक के पास अब भी वे शक्तियां संविधि, अर्थात् पुलिस अधिनियम के अनुसार ही दी गई हैं।

डॉ. अम्बेडकरः यह पुलिस अधिनियम से भिन्न है और वास्तव में इसमें स्थानीय विधान-मंडल द्वारा संशोधन किए जाने की शर्त भी है। प्रश्न यह है कि क्या आप चाहते हैं कि महानिरीक्षक का पद एक ऐसे अधिकारी का पद मान लिया जाए, जो कुछ कर्तव्यों का निर्वाह करता है और एक अधिकारी की हैसियत से उसके मामले में मंत्री या स्थानीय सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती?

लॉर्ड जैटलैंडः यह तो उसका प्रभाव है। यह मेरा प्रस्ताव है। मेरा विचार है कि महानिरीक्षक में इस समय जो शक्तियां निहित हैं, उन्हें कायम रहने दिया जाए।

माननीय कावस जी जहांगीर

किस प्राधिकार से पुलिस अधिनियम द्वारा या भारत सरकार अधिनियम द्वारा?

माननीय सी. सीतलवाडः पुलिस अधिनियम के प्रावधानों को बदलने का अधिकार स्थानीय विधान-मंडल या किसी भी विधान-मंडल को नहीं होना चाहिए।

लॉर्ड जैटलैंडः जी हां। मैं समझता हूं, यह संघीय सरकार का अधिनियम होना चाहिए।

श्री जफरुल्ला खांः ऐसा तो पुलिस अधिनियम को एक अधिनियम के रूप में रखकर ही किया जा सकता है, जिसे कोई प्रांतीय सरकार महानिरीक्षक की सहमति के बिना न निरस्त कर सकती है, न बदल सकती है, और न ही परिशोधित कर सकती है।

डॉ. अम्बेडकरः यही स्थिति तो आज भी है, क्योंकि अधिनियम में केंद्र सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना संशोधन नहीं किया जा सकता।

श्री जफरुल्ला खांः यदि मुझे मात्र इतना जोड़ने की अनुमति हो, शायद इस समिति के सभी सदस्य इस बात से अवगत नहीं हैं कि संघीय संरचना उप-समिति और संयुक्त उप-समिति ने, जिसे उप-समिति सं. 1 और 2 ने स्थापित किया था, महत्वहीन विषयों पर अनेक अधिनियमों को धारा 80(3)(ज) के अधीन उस सूची में रखने का सुझाव दिया था और यदि हम पुलिस अधिनियम को उस सूची में स्थान दे दें, तो उससे किसी भी प्रकार के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होगा।

डॉ. अम्बेडकर: मैं श्री जफरुल्ला खां से सामान्यतः सहमत हूँ। पुलिस अधिनियम को अनुसूची में आज तक स्थान न देने का कारण यह है कि यह विषय आरक्षित विषय है, इसलिए तथ्य तो यह है कि भारत सरकार का विधि और व्यवस्था पर पूरा नियंत्रण है और जब विधि और व्यवस्था के हस्तांतरण की स्थिति उत्पन्न होती है, तो वस्तुस्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है। मैं समझता हूँ कि इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि हम चाहे संक्रमण काल के लिए ही सही, कुछ संरक्षणों की आवश्यकता पर विचार करें, चाहे वे उन रक्षोपायों को जारी रखने के लिए ही हों, जो इस समय मौजूद हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से इस सुझाव के पक्ष में हूं कि इस पुलिस अधिनियम को अनुसूची में शामिल कर लिया जाए, जिसके लिए आज गवर्नर जनरल या भारत सरकार की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है।

एक और मुद्दा जिसकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह पुलिस और विधि और व्यवस्था विभाग के प्रश्न से संबंधित है। यही मुद्दा मैंने प्रांतीय संविधान उप-समिति में भी उठाया था। जाहिर है, इस प्रश्न पर भावी प्रांतीय सरकारों का दायित्व के दृष्टिकोण से भी विचार किया गया है। मुझे लगता है कि इस प्रश्न पर प्रांतों में रहने वाले विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों और ऐसी आपात स्थितियों की दृष्टि से भी विचार किया जाना चाहिए, जो सांप्रदायिक दंगों और ऐसी ही अन्य आपात स्थितियों में उत्पन्न होती है। मैं समझता हूँ कि विभिन्न प्रांतों में रहने वाले अल्पसंख्यकों के लिए यह जानना कि जब सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे हैं, तो किस समुदाय का कौन अधिकारी उस इलाके में कानून और व्यवस्था कायम करेगा, वास्तव में एक महत्वपूर्ण संरक्षण होगा। हम सभी जानते हैं कि पुलिस अधिकारियों पर पक्षपात और एक या दूसरे संप्रदाय के प्रति सहानुभूति दर्शाने का आरोप लगाया जाता है। इस प्रकार के आरोप का पर्याप्त औचित्य तो नहीं है, लेकिन इसके बावजूद ऐसी घटनाएं भी हो सकती हैं, जिनमें कुछ विशेष इलाकों में उन अधिकारियों के पक्षपात का औचित्य सिद्ध किया जा सकता है। मेरा ख्याल है कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के हित में यह बहुत आवश्यक है कि पुलिस अधिकारियों की तैनाती और तबादले कम से कम आपात स्थिति के दौरान मंत्रियों के हाथ में नहीं होने चाहिए। यह संभव है कि कोई मंत्री जिसके संप्रदाय का उस प्रांत में बहुमत है किसी भी अवसर विशेष पर किसी पुलिस अधिकारी को उस स्थान से हटा दे, जो शायद उस संप्रदाय के लोगों का पक्ष नहीं ले, जिसका वह मंत्री है।

श्री जफरुल्ला खां: साधारणतः तो यह काम महानिरीक्षक करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर: मैं जानता हूँ कि बंबई प्रेसीडेंसी में पुलिस अधिकारियों के स्थानांतरण को लेकर भारी हो-हल्ला मचा था। पता नहीं ऐसा पुलिस निरीक्षक ने करवाया था या प्रभारी अधिकारी ने, लेकिन मैं समझता हूँ कि यह एक बहुत बड़ा संरक्षण है, जिसके लिए भावी भारत के संविधान में प्रावधान करना आवश्यक है।

इस संबंध में मेरा विशिष्ट प्रस्ताव यह है कि आपात स्थिति में जब भी कोई दंगा-फसाद या सांप्रदायिक उपद्रव उठ खड़ा हो, तो विभिन्न इलाकों में पुलिस की कार्रवाई में मंत्री के स्थान पर गवर्नर को प्रशासनिक शक्तियां दी जानी चाहिए।

पांचवी बैठक-12 जनवरी, 1931

अध्यक्ष: डॉ. अम्बेडकर, श्री जफरुल्ला खां और सरदार संपूरन सिंह को यह पसंद नहीं है कि भारतीय सिविल सेवा में यूरोपीय मूल के अलावा अखिल भारतीय स्तर पर आगे किसी प्रकार की भर्ती की जाए। कुछ सदस्यों की यह भी राय है कि न्यायिक पदों के लिए भर्ती आगे से भारतीय सिविल सेवा में से नहीं की जाए।

डॉ. अम्बेडकर: महोदय! भारतीय पुलिस सेवा में भी।

अध्यक्ष: तो क्या आप उसे यों रखना चाहते हैं, 'भारतीय सिविल सेवा और भारतीय पुलिस सेवा में'?

डॉ. अम्बेडकर: जी हाँ।

अध्यक्ष: क्या यही मत श्री जफरुल्ला खां का भी है?

श्री जफरुल्ला खां: जी हाँ।

अध्यक्ष: और सरदार संपूरन सिंह का भी?

सरदार संपूरन सिंह: बिल्कुल।

अध्यक्ष: मेरा अभिप्राय केवल आपके मत अभिलिखित करना है। इसलिए मैं यह शब्द रख देता हूँ 'और भारतीय पुलिस सेवा के लिए'।

छठी बैठक-13 जनवरी, 1931

डॉ. अम्बेडकर: मैं उप-पैराग्राफ (4) के बाद इस आशय के एक नए पैराग्राफ का समावेश करना चाहता हूं: 'उप-समिति चाहती है कि लोक सेवा में दलित वर्गों को रोजगार दिलाने के मामले में उदार नीति अपनाई जाए और यह विशेष रूप से सिफारिश करती है कि पुलिस और सेना की भर्ती, जिससे उन्हें इस समय अलग रखा गया है, अब उनके लिए खोल दी जाए।'

श्री चिंतामणि: उनको नियमतः अलग रखा गया है या केवल व्यवहार में ऐसा होता आया है? डॉ. अम्बेडकर: नियम के द्वारा पुलिस सेवा आयोग में यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि दलित वर्ग अपात्र है।

श्री चिंतामणि: यदि कुछ विशिष्ट विभागों, जैसे पुलिस और सेना, से दलित वर्गों को अलग रखे जाने संबंधी नियम हैं भी तो वे ऐसे नियम नहीं होंगे, जो समस्त देश पर लागू होते हों। इस प्रकार के कुछ नियम कुछ प्रांतों में होंगे, सबमें नहीं।

डॉ. अम्बेडकर: यदि ऐसा वांछनीय हो, तो मैं अपने प्रस्ताव का अंतिम अंश इस प्रकार रखना चाहूंगा 'और विशेष रूप से सिफारिश करती है कि उन्हें (दलित वर्गों को) इसके बाद उनकी अस्पृश्यता के

कारण लोक सेवा के किसी भी विभाग से बाहर नहीं रखना चाहिए'।

राजा नरेन्द्र नाथ : बिल्कुल, यह बात खंड (5) (क) में आती है।

माननीय कावस जी जहांगीर

वस्तुस्थिति यह है कि इस समुदाय को इसलिए अलग कर दिया गया है कि उन्हें रोजगार देना अव्यावहारिक है। इसकी तफसील में इस समय जाने से कोई लाभ नहीं। यदि हमारे पास दलित वर्गों के लिए अलग से कोई अनुभाग होता, तब भी ऐसे वर्गों के सदस्यों के लिए यह परेशानी होती कि उन्हें उन लोगों के बीच सिपाही का काम करना पड़ता, तो उनसे संतुष्ट नहीं रहते। यह बात स्पष्ट नहीं है कि इस भारी असुविधा को किस तरह दूर किया जाए? मैं इस पर कोई राय नहीं दे सकता। जो कुछ हुआ है, वह बहुत ही अनिच्छा से किया गया है, जिसे मैं समझता हूं कि डॉ अम्बेडकर स्वीकार करेंगे। लेकिन मुझे यह सब कुछ कहने में भी कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती, जो डॉ. अम्बेडकर हमसे करवाना चाहते हैं, हालांकि वह नेक भाव मात्र ही होगा। मेरा ख्याल है कि हमने यही राय सैकड़ों बार व्यक्त की है और उनका परिणाम शून्य रहा है। डॉ. अम्बेडकर अच्छी तरह जानते हैं कि किस प्रकार के आदेश पारित किए गए हैं और किस प्रकार वे अव्यवहार्य सिद्ध हुए हैं। इसके बावजूद मैं उस पैराग्राफ के समावेश का समर्थन करता हूँ, जिसका उन्होंने प्रस्ताव किया है। हम यह जोखिम उठा रहे हैं और यह जानते हैं कि संभव है यह व्यावहारिक प्रस्ताव सिद्ध न हो। लेकिन जैसा आपने पहले कभी कहा है, यदि हम किसी आदर्श की ओर उन्मुख हों, तो यह हमेशा संभव नहीं कि वह तर्कपूर्ण भी हो।

डॉ. अम्बेडकर : मुझे विशेष रूप से इस बात की चिंता है कि पुलिस और सेना का उल्लेख किया जाना चाहिए, क्योंकि यही वे विभाग हैं, जिनके लिए दलित वर्गों के सदस्य सबसे अधिक उपयुक्त होंगे।

अध्यक्ष : यह बात पैराग्राफ (5) (क) और (ख) में आ गई है।

डॉ. अम्बेडकर : उस तरह तो एंग्लो-इंडियन समुदाय का प्रश्न भी उसी में शामिल हो गया। मैं खंड (4) के बाद एक नए खंड का प्रस्ताव रखना चाहता हूं।

'उप-समिति की इच्छा है कि लोक सेवाओं में दलित वर्गों के नियोजन के मामले में उदार नीति अपनाई जाए और विशेष रूप से यह सिफारिश करती है कि पुलिस और सेवा विभागों में भर्ती, जिससे अब तक वे बाहर रखे गए हैं, उनके लिए खोल दी जाए'।

राजा नरेन्द्र नाथ : मैं एक सुझाव देना चाहता हूं और वह यह है कि हम उसमें यह जोड़ दें 'किसी भी व्यक्ति को देश की किसी भी सेवा में प्रवेश के लिए धर्म, जाति या लिंग के आधार पर न तो अयोग्य समझा जाएगा और न ही उसके साथ किसी प्रकार का भेदभाव बरता जाएगा।' मैं एक विशेष सिफारिश के रूप में इसका समावेश चाहता हूँ।

डॉ. अम्बेडकर : इस पर बाद में चर्चा होगी।

श्री बसु : मुझे डॉ. अम्बेडकर से सहानुभूति है कि वह चाहते हैं कि वे अयोग्यताएं समाप्त कर दी जाएं, जिनसे उनके समुदाय को क्षति पहुंचती है और यदि किसी प्रांत में प्रशासनिक नियमों के अंतर्गत किसी प्रकार की अयोग्यता निर्धारित कर दी गई है, तो वह तत्काल समाप्त कर दी जाए। लेकिन उन्होंने जिस तरह यह प्रस्तुत किया है, इससे बात बहुत सामान्य हो गई है। उदाहरण के लिए मेरे प्रांत में अनेक पदों पर दलित वर्गों के सदस्य ही बैठे हुए हैं। यह कोई ऐसा मामला नहीं है, जिसका मेरे प्रांत से गहरा संबंध हो।

डॉ. अम्बेडकर : मैं कुछ सीमा संबंधी शब्द शामिल करने के लिए तैयार हूँ जैसे, 'जहां उन्हें इस समय बाहर रखा गया है'।

राजा नरेन्द्र नाथ : ऐसा कोई नियम नहीं है, जो उन्हें पुलिस में रोजगार देने से वंचित करे। लेकिन व्यवहार में उन्हें रोजगार नहीं दिया जाता। एक बार परिषद के एक सदस्य ने यही प्रश्न उठाया था और सरकार से पूछा था कि इन लोगों को पुलिस में क्यों भर्ती नहीं किया जाता और क्या यह परिपाटी भारत सरकार अधिनियम की धारा 96 का उल्लंघन नहीं है? उसका जो उत्तर दिया गया, वह संतोषजनक नहीं था। मेरा ख्याल है कि जिन शब्दों का मैंने सुझाव दिया है यदि उन्हें जोड़ दिया जाए, तो कुछ लाभ हो सकता है। साथ ही सामान्य इच्छा और सामान्य सिफारिश भी लाभकर सिद्ध होगी। लेकिन मैं आपको यह भी बता दूं कि सामान्य भावना की अभिव्यक्ति उतनी कारगर नहीं होगी, जितनी कि मेरे द्वारा सुझाए गए शब्दों के समावेश से होगी।

मेजर स्टैनले : सैनिक सेवा का सुस्पष्ट उल्लेख निश्चय ही इस समिति के विषय-क्षेत्र से बाहर है।

श्री मोदी : हमने सिफारिश की है कि सेना की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए।

अध्यक्ष : मेरा ख्याल है कि यदि आप यह कहें, तो इसे कुछ कम विवादास्पद बनाया जा सकता है 'और विशेष रूप से सिफारिश करते हैं कि सभी सेवाओं में उनके लिए भर्ती खोल दी जाए'।

श्री मोदी : जी हां, जिससे उन्हें अब तक वंचित रखा जाता रहा है।

अध्यक्ष : मैं यह नहीं कहूंगा, क्योंकि इससे विवाद उत्पन्न हो जाएगा। आप यही कहना चाहते हैं कि सभी सेवाओं में भर्ती के द्वार उनके लिए खोल दिए जाएं।

लैफ्टि. कर्नल गिडने : उनको ऐसे रोजगार के लिए किसी प्रकार से योग्य नहीं माना जाएगा।

अध्यक्ष : क्या मैं यह बात कह सकता हूं कि यदि हम चाहते हैं कि यह रिपोर्ट सबकी समझ में आ जाए, तो इसमें ऐसे दो पैराग्राफ का रखना जिनमें ठीक वही बात कही गई हो, कुछ अनुपयुक्त प्रतीत होता

है, इसलिए मैं डॉ. अम्बेडकर को यह सुझाव देना चाहता हूँ कि यदि हम यही शब्द चाहते हैं, तो बेहतर हो कि खंड 5 के बाद आएं। हमें अपनी सामान्य सिफारिशें खंड 5 में रखनी चाहिए ओर उसके बाद मेरा सुझाव है कि खंड 5 के अंत में हम एक पैराग्राफ जोड़ दें, जिसमें 'यह सिफारिश करते हुए' स्पष्ट किया गया अर्थात्, उप-समिति का संकेत विशेष रूप से खंड 5 में दी गई सिफारिश दलित वर्गों से हैं।

डॉ. अम्बेडकर : बहुत अच्छा।

अध्यक्ष : यदि आपको आपत्ति न हो तो हम खंड 5 पर पहले चर्चा कर लें और फिर देखें कि उस आशय के किसी खंड को जोड़ने की आवश्यकता है या नहीं। क्या किसी को खंड 5 के प्रारूप पर कोई टिप्पणी करनी है?

राजा नरेन्द्र नाथ : इस बारे में मैं कह चुका हूं। मैंने यह सुझाव दिया था कि 'अयोग्यता' के बाद आपको यह जोड़ देना चाहिए – 'न ही उसके साथ किसी प्रकार का पक्षपात किया जाएगा'।

अध्यक्ष : मैं चर्चा के लिए इसे बाद में पेश करूंगा। हम इस विषय पर बाद में चर्चा करेंगे। डॉ. अम्बेडकर का सुझाव है कि खंड 5 पारित करने के बाद हम ये शब्द जोड़ दें, 'उप-समिति ने यह सिफारिश करते समय दलित वर्गों की समस्या का विशेष रूप से ध्यान रखा है। इसकी इच्छा है कि लोक सेवाओं में दलित वर्गों के रोजगार के मामले में उदार नीति अपनाई जाए और विशेष रूप से यह सिफारिश करती है कि उनके लिए सभी सेवाओं में, जिसमें पुलिस सेवा भी शामिल है भर्ती के लिए, दरवाजे खोल दिए जाएं।' यह संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तावित किया है, जिसे खंड 5 के अंत में समाविष्ट किया जाना है। जो इसके पक्ष में हो और जो विपक्ष में हों, वे कृपया सूचित करें; संशोधन पारित हुआ।

पूर्ण अधिवेशन (सामान्य पुनरावलोकन)
आठवीं बैठक-19 जनवरी, 1931

भावी संविधान में दलित वर्गों के संरक्षणों के लिए सुस्पष्ट और ठोस प्रावधानों की मांग

डॉ. अम्बेडकर : प्रधानमंत्री महोदय! गोलमेज सम्मेलन को ऐसे दो सबसे अधिक महत्व के प्रश्नों से जूझना पड़ा है, जो निश्चय ही किसी भी समुदाय के राजनीतिक जीवन को संगठित करने के किसी भी प्रयास में निश्चय ही उभरते हैं। उत्तरदायी सरकार की समस्या उनमें से एक थी और दूसरी थी प्रतिनिधि सरकार की।

प्रांतों में उत्तरदायी सरकार के प्रश्न पर मुझे बहुत थोड़ा ही कहना है। मैं समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करता हूँ और जिन मुद्दों पर मेरा मतभेद है, उनको छोड़कर मैं उसका समर्थन करता हूं। लेकिन जहां तक केंद्र में उत्तरदायी सरकार का प्रश्न है, मैं मानता हूं कि मेरा मत भिन्न है। यह कहना बेईमानी होगी कि संघीय संरचना जिससे कि हम आज परिचित हैं, उप-समिति की रिपोर्ट में सरकार के नौकरशाह स्वरूप में, किसी प्रकार के परिवर्तन पर विचार नहीं किया गया है। लेकिन मेरे लिए आपसे अपनी यह राय छिपाना भी उतनी ही बेईमानी होगी कि यह परिवर्तन दिखाने मात्र का है, सारपूर्ण नहीं है और जिसे उत्तरदायी कहा गया है, यह मिथ्या है, वास्तविक नहीं।

लॉर्ड चांसलर ने हमें बताया था कि उन्होंने बीजारोपण कर दिया है। अब इस पौधे की देखभाल करना हमारा काम है।

महोदय, हम दरअसल लॉर्ड चांसलर के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है। मैं उनका आभारी हूं। लेकिन मुझे यह उम्मीद नहीं है कि उन्होंने जो पौधा लगाया है, वह बढ़ेगा भी। मेरा ख्याल है कि उन्होंने जिस बीज का चुनाव किया है, उसका दाना फलहीन है और जिस मिट्टी में उन्होंने उसे बोया है, वह उसके बढ़ने के लिए अनुकूल नहीं है।

मैंने लॉर्ड चांसलर को एक वक्तव्य* प्रस्तुत किया था, जिसमें संघीय भारत के भावी संविधान के बारे में मेरे मत शामिल थे। मुझे नहीं मालूम कि जिस समिति की उन्होंने अध्यक्षता की थी, उसने उन पर विचार भी किया था या नहीं। क्योंकि मुझे समिति की रिपोर्ट जिसके वे अध्यक्ष थे, इसका कोई हवाला नहीं मिला। मेरे आज भी वही विचार हैं, जो उसमें व्यक्त किए गए थे और मैं ऐसे संविधान को अपना समर्थन नहीं दे सकता, जो मेरे उन विचारों से इतना अधिक भिन्न है। बल्कि यदि मुझे वर्तमान प्रणाली और समिति जन्य इस संकर प्रणाली में से चयन करने को कहा जाए, तो मैं वर्तमान प्रणाली को ही तरजीह दूंगा। लेकिन महोदय! यदि समिति की रिपोर्ट में समाविष्ट केंद्र सरकार से माननीय तेज बहादुर सप्रू, जो इस सम्मेलन के मित्र, मार्गदर्शक और विचारक रहे हैं, संतुष्ट हैं, यदि इससे श्री जयकर, जो स्वयं को भारत के युवाओं का प्रतिनिधि घोषित करते हैं और यदि इससे माननीय ए.पी. पात्रे प्रसन्न हैं, जो भारत के गैर-ब्राह्मणों के प्रतिनिधि हैं, तो फिर मेरे लिए इसका विरोध करना निरर्थक है। इसलिए मेरा दृष्टिकोण उस व्यक्ति जैसा है, जो किसी बात का अनुमोदन भी नहीं करता और न ही उसमें बाधा डालता है, मैं इसे उन पर छोड़ता हूं, जो सफलता की कामना करते हैं।

ऐसा रवैया मुझे ज्यादा पसंद है, क्योंकि मेरे पास सरकार के स्वरूप के बारे में उन लोगों का कोई आदेश नहीं है, जिनका मैं प्रतिनिधि हूं। लेकिन मेरे पास एक आदेश है और वह यह कि उत्तरदायी सरकार का विरोध न करते हुए भी इस बात का ध्यान रखना कि कोई भी उत्तरदायी सरकार तब तक स्थापित न हो पाए, जब तक कि वह सच्चे अर्थ में प्रतिनिधि सरकार न हो। जब मैं सम्मेलन की उपलब्धि पर यह जानने के लिए नजर डालता हूँ कि उसने प्रतिनिधि सरकार के प्रश्न का समाधान किस प्रकार किया है, तो मुझे घोर निराशा होती है। मताधिकार और विधान-मंडलों में विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व ऐसी दो बातें हैं, जिन पर सच्चे अर्थ में प्रतिनिधि सरकार आधारित होती है। हर व्यक्ति यह जानता है कि नेहरू समिति ने वयस्क मताधिकार को माना था और संविधान के जिस भाग का उन्होंने निर्माण किया था, उसे भारत के सभी राजनीतिक दलों ने समर्थन दिया था। जब मैं इस सम्मेलन में आया तो मैंने सोचा था कि जहां तक मताधिकार के प्रश्न का संबंध है, लड़ाई जीती जा चुकी है। लेकिन मताधिकार समिति में पहुंचकर मेरी आंखें खुल गईं। मुझे यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि उन सभी लोगों ने जिन्होंने नेहरू रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे, के मन में कुछ और ही था। यहां तक कि भारतीय उदारवादियों को भी प्रांतीय विधान-मंडलों में जनसंख्या के 25 प्रतिशत् लोगों को मताधिकार दिलाने के लिए सहमत होने के लिए तैयार करना भी मुश्किल हो गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि केन्द्रीय विधान-मंडल के लिए मताधिकार की योग्यता क्या है? कोई नहीं जानता। लेकिन मुझे यह उम्मीद बिल्कुल नहीं है कि वह ऐसा होगा, जिससे कि प्रांतीय विधान-मंडलों की तुलना में केन्द्रीय विधान-मंडल जनता का अधिक प्रतिनिधित्व कर सकेगा। यदि मताधिकार इतना सीमित होगा, तो उसका एकमात्र परिणाम यही हो सकता है कि भारत की भावी सरकार वर्गों द्वारा संचालित जनता की सरकार बन जाएगी।

जहां तक सीटों के बहुसंख्यक और विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के बीच वितरण का प्रश्न है, हम सभी यह जानते हैं कि इस पर गतिरोध है। मेरी राय में यह गतिरोध अधिकांशतः अतीत की शरारत का नतीजा है। मुझे विश्वास है कि यदि भारत में प्राधिकारियों ने 'सबके लिए न्याय, किसी के लिए पक्षपात नहीं', का सिद्धांत अपनाया होता, तो समस्या का समाधान इतना कठिन नहीं बन जाता। ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न समुदायों के लिए उनसे प्राप्त राजनीतिक लाभ के अनुसार भिन्न-भिन्न मान्यताएं निर्धारित कीं और अनेक समुदायों को राजनीतिक शक्ति का असाधारण अंश देकर दलित वर्गों को उनके देय अंश से

वंचित किया। इस प्रकार सबसे अधिक नुकसान दलित वर्गों को हुआ। मैं यही आशा करता रहा कि यह सम्मेलन इसी सिद्धांत का पालन करेगा कि जिस मसले को गलत ढंग से तय किया जाता है, वह कभी तय नहीं हो पाता और प्राचीन मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करके दलित वर्गों को उनकी सीटों का न्यायपूर्ण कोटा मिलेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। अन्य अल्पसंख्यकों के दावों को पहले से ही स्वीकार कर लिया गया है और निश्चित कर दिया गया है। अब उनकी केवल यही आवश्यकता शेष है कि परिवर्तन और संशोधन करके उन्हें नई सरकार के विस्तृत ढांचे और बढ़े हुए कार्य-क्षेत्र के अनुरूप बना दिया जाए। जो भी परिवर्तन-संशोधन हों, उन बुनियादों को खोदने का साहस कोई भी नहीं कर सकता, जो पहले से रख दी गई हैं। दलित वर्गों का मामला बिल्कुल भिन्न है। उनके दावों की तो अभी ही सुनवाई हुई है। अभी तो उनका न्याय-संगत निर्णय भी नहीं हुआ है और मैं नहीं जानता कि उनमें से कितनों को प्रवेश दिया जाएगा। मेरा ख्याल है कि उनकी दयनीय स्थिति को देखते हुए यह भी असंभव नहीं है कि दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए मांगों को इस सीमा तक घटा दिया जाए कि अन्य समुदायों की आए दिन बढ़ती हुई छीना-झपटी समाप्त की जा सके, जो संरक्षण के लिए नहीं बल्कि सत्ता के लिए जोड़-तोड़ कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति को देखते हुए आवश्यक है कि मैं अपना दृष्टिकोण सर्वथा स्पष्ट कर दूं। चूंकि भावी संविधान में दलित वर्गों के क्या अधिकार होंगे, यह निश्चित नहीं किया गया है, इसलिए महामहिम की सरकार की ओर से केंद्र तथा प्रांतों के दायित्व के संबंध में, जो भी घोषणा की जाए, उसमें यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि उस दिशा में उठाया गया कोई भी कदम इसी शर्त पर और उन समुदायों के बीच हुए करार के आधार पर उठाया जाए, जिससे दलित वर्गों के हितों और अधिकारों की कारगर सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। स्थिति की गंभीरता पर बल देते हुए, मैं आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि यदि इस संबंध में स्थिति पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो जाती, तो हमें कोई भी घोषणा स्वीकार्य नहीं होगी और यदि ऐसा हुआ, तो मैं और मेरे सहयोगी सम्मेलन की आगे की कार्यवाही में भाग लेने की कोई जिम्मेदारी नहीं लेंगे और इससे अपना संबंध विच्छेद करने पर बाध्य होंगे।

महोदय! मैं आपसे यह मांग करते हुए केवल यही अपेक्षा करता हूं कि आप अपने वचन को कार्य रूप दें। ब्रिटिश संसद और उसके प्रवक्ताओं ने हमेशा यह दावा किया है कि वे दलित वर्गों के न्यासी हैं और मुझे विश्वास है कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह सभ्यता के द्योतक उन परंपरागत असत्यों में से नहीं हैं, जिनका हम सभी मानव संबंधों को यथासंभव सुखद बनाए रखने के लिए प्रयोग करते हैं। इसलिए मेरी राय में प्रत्येक सरकार का कर्त्तव्य है कि विश्वास भंग न हो और प्रधानमंत्री महोदय! मुझे यह कहने की अनुमति दीजिए कि यदि ऐसा करके आपने हमें उन लोगों की दया पर छोड़ दिया, जिन्होंने हमारे कल्याण में कोई रुचि नहीं दर्शायी है और जिनकी समृद्धि और महानता हमारे विनाश और अधोगति पर टिकी हुई है, तो दलित वर्ग इसे महामहिम की सरकार द्वारा किया गया महान विश्वासघात मानेंगे।

अपने इस कथन के लिए भारत के राष्ट्रवादी और देशभक्त मुझे संप्रदायवादीकहेंगे। लेकिन मैं इससे नहीं डरता। भारत एक विलक्षण देश है। उसके राष्ट्रवादी और देशभक्त लोग विलक्षण हैं। भारत में देशभक्त और राष्ट्रवादी वह माना जाता है, जो अपने बंधुओं के साथ अमानुषिक व्यवहार होता देख सके ओर उसकी मानवीयता विरोध में न खड़ी हो। वह जानता है कि पुरुष-स्त्रियों को अकारण ही उनके मानव अधिकारों से वंचित रखा जाता है, लेकिन उसका नागरिकता बोध उसे किसी उपयोगी कार्य के लिए नहीं उकसाता। वह देखता है कि एक पूरे वर्ग के लिए लोक नियोजन के द्वार बंद हैं। लेकिन यह देखकर भी उसका न्याय और ईमानदारी का बोध नहीं जगता। वह देखता है कि ऐसे सैकड़ों रिवाज समाज में प्रचलित हैं, जो मनुष्य और समाज को क्षति पहुंचाते हैं, लेकिन उसमें जुगुप्सा का भाव उत्पन्न नहीं होता। देशभक्त की एक पुकार में जो शक्ति है, वह उसी के लिए नहीं, वरन् उसके समस्त वर्ग के लिए बहुत बड़ी शक्ति होती है। मुझे खुशी है कि मैं देशभक्तों के उस वर्ग का नहीं हूँ। मेरा संबंध तो उस वर्ग से है, जिसका लोकतंत्र के प्रति एक सुस्पष्ट दृष्टिकोण है और जो एकाधिकार को समूल नष्ट करने के लिए कृतसंकल्प है। हमारा लक्ष्य जीवन के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में 'एक व्यक्ति, एक मान्यता' के आदर्श का प्रतिफल देखना है। चूंकि प्रतिनिधि सरकार उसी साध्य का एक साधन है, इसलिए दलित वर्ग उसको बहुत महत्व देता है और चूंकि हमारे लिए इसका इतना महत्व है, मैंने आपसे यह आग्रह किया है कि आपकी घोषणा उस स्थिति में उचित होगी, जब उपर्युक्त आदर्श प्राप्त हो जाए। आप कहेंगे कि आपकी दलित वर्गों के साथ पूरी सहानुभूति है। लेकिन इस पर मेरा उत्तर यह होगा कि पीड़ित जनता के लिए कुछ और ठोस, कुछ और स्पष्ट आश्वासन चाहिए। हो सकता है कि आप मेरी बातों की इसलिए उपेक्षा करें कि इनसे मेरे अनुचित संदेहों की गंध आती है। इसका मेरे पास यही जवाब है कि किसी बात के प्रति चिंतित होने के लिए उपेक्षा का पात्र होना अत्यधिक आश्वासन के हाथों नष्ट हो जाने से कहीं बेहतर है। □

(शेष अगले अंक में)

आज के प्रश्न और बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

■अरविन्द कुमार सम्बल

सुखिया सब संसार है खावै अरू सोवे, दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।[1]

कबीरदास की यह वाणी केवल कबीरदास पर ही नहीं लागू होती बल्कि उन सभी से इसका सरोकार है जो भूखी, भयभीत और रोने वाली जनता के साथ खड़े होते हैं और उनकी मुक्ति के लिए जगते हैं तभी उन्हें जगाते भी हैं। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर उन्हीं में से एक थे जिनकी पूरी जिन्दगी शोषितों-पीड़ितों और वंचितों की लड़ाई लड़ने में खप गई। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर न केवल सामाजिक-मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे थे बल्कि सच तो यह है कि आधुनिक भारत के निर्माण में सामाजिक-मुक्ति के हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे थे। अपने समकालीनों में डॉ. अम्बेडकर अलग ढंग से सोचते थे। उनके लिए आजादी का अर्थ दूसरा था। एक प्रश्न उन्हें सदैव परेशान किया करता था कि किसकी आजादी ? जिस देश में 85 फीसदी जनता अभाव, अशिक्षा, भूख और स्वप्नहीनता की स्थिति में जीने के लिए अभिशप्त हो और हमारे पास उससे मुक्ति के कोई ठोस 'मॉडल' न हो, ऐसे में आजादी का मुहावरा स्पष्ट किया जाना चाहिए, इसके बिना मिली हुई आजादी सम्पूर्ण भारत को आजाद नहीं करा पायेगी, यही चिन्ता थी जो उन्हें दुखी भी करती थी और रुलाती भी थी तथा वे वंचित समुदाय के अपने समय के कबीर ही थे तभी तो अपने समकाल में विद्रोही चेतना के सूत्रधार थे। हजारों वर्षों से जो शोषण की खाई बनी हुई है, अन्तहीन सिलसिला जारी है, वैसे

में 'समन्वय' की कल्पना बेमानी और अन्यायपूर्ण है। इसलिए बाबासाहेब जीवन पर्यन्त जूझते रहे, संघर्ष करते रहे और संघर्ष करने के लिए प्रेरित करते रहे, जिससे जनक्रांति तो नहीं हुई किंतु जनचेतना निर्मित हुई। और यही जनचेतना अब शोषितों, वंचितों, दलितों, पीड़ितों को मुक्ति के लिए सम्बल प्रदान कर रही है। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का दायरा बहुत बड़ा था और उनकी प्रतिबद्धता बहुत साफ थी। **यह अजीब बात है कि बड़े-से-बड़े चिन्तक, इतिहासकार और व्याख्याता कैसे यह समझ नहीं पाए या चूक गए। जिससे एक परेशानी यह हुई कि आधुनिक भारत के निर्माताओं की प्रथम श्रेणी से बाहर रखे गए बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर।** यह इतिहास की बड़ी भूल मानी जानी चाहिए। इस संदर्भ में उत्तरशती के विमर्शकार और आलोचक चौथीराम यादव की अवधारणाओं से परिचित होना आवश्यक है। अपनी पुस्तक 'उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज' में चौथीराम यादव डॉ. अम्बेडकर के बारे में लिखते हैं-

"डॉ. अम्बेडकर केवल दलितों के ही हितैषी नहीं थे बल्कि उन्होंने स्त्रियों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष किया। वह मानवतावादी समाजशास्त्री एवं अर्थशास्त्री थे और उनमें मानवीय प्रतिबद्धता थी।"[2]

इससे पता चलता है कि डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष का दायरा कितना बड़ा था। कहना न होगा कि बाबासाहेब के समकालीनों में इतना बड़ा दायरा किसी अन्य नेता और चिन्तक का नहीं था। यूँ तो कहने के लिए बड़ी-बड़ी बातें कही जा सकती हैं किंतु जब उनके भीतर के सच को जानते हैं तो मुँह की खानी पड़ती है। 'पूना पैक्ट' और बाद में 'हिंदू कोड बिल' की घटना को इस पूरी कहानी के संदर्भ में रखकर देखने की जरूरत है। आज के महिला बिल के समर्थकों और दलित हितैषियों को अब भी 'पूना पैक्ट', 'हिंदू कोड बिल' और आज का 'सामाजिक न्याय' कितना सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है इस पर एक बार सोचा जाना चाहिए। वो भी तब जब हम बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर को याद कर रहे होते हैं। अब देखिए न भारतीय राजनीति का इतिहास जिसे गाँधी और नेहरू युग में बाँट कर देखा तो जाता है किन्तु वहीं दूसरी ओर अम्बेडकर? इस विषय पर आलोचक चौथीराम यादव ने 'उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज' विषयक पुस्तक में एक निबंध हिन्दी नवजागरण और उत्तरशती के विमर्श' में यह प्रश्न बड़े चुटीले ढंग से उठाया है। भारतीय राजनीति के इतिहास को गाँधी युग और नेहरू युग में बाँट कर

तो देखा जाता है लेकिन अम्बेडकर उससे बेदखल क्यों हैं? क्या वह अम्बेडकर का युग नहीं है? दलितों-पिछड़ों स्त्रियों और अल्पसंख्यकों के बारे में उनसे ज्यादा किसने सोचा-विचारा? सोचना-विचारना एक बात है और भविष्योन्मुखी दृष्टि के साथ सकारात्मक सोच का होना बिल्कुल दूसरी बात। दलितों और स्त्री हितों के लिए अम्बेडकर से ज्यादा काम किसने किया? क्या भावनात्मक सहानुभूति रखने वाले गाँधी ने, या 'हिंदू कोड बिल' का समर्थन करने का वादा कर मुकर जाने वाले नेहरू ने? बीसवीं शताब्दी गाँधी और नेहरू के नाम रही होगी, इक्कीसवीं शताब्दी तो फिलहाल अम्बेडकर की शताब्दी ही है।''[3]

इस पर गंभीरता से सोचने और विचारने की जरूरत है। क्योंकि इसमें हाशिए के समाज की अस्मिता और पहचान का प्रश्न जुड़ा हुआ है। सच तो यह है कि बाबासाहेब अम्बेडकर का आना इस भारतीय समाज में उसी कड़ी का अगला विकास क्रम है जिसके अतीत में बुद्ध, कबीर, नानक, रैदास, ज्योतिबा फूले का नाम जुड़ा है। विचार क्रान्ति की यह वो परम्परा है जो तर्क और ज्ञान को न सिर्फ प्रोत्साहित करती है बल्कि जीवन का मूल मन्त्र बना कर संघर्ष करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। पहली बार ऐसा होता है जब बाबासाहेब यह कहते हैं। अध्ययन के बगैर दुनिया में कोई कुछ हासिल नहीं कर पायेगा।[4]

प्राचीन काल में देश में यह विधान था कि ज्ञान की दुनिया औरतों और गैर ब्राह्मणों के लिए नहीं बनी है तथा यदि ऐसा करते हुए कोई पाया जाएगा तो दंड का अधिकारी होगा। (देख सकते हैं मनुस्मृति) हद तो यह है कि ब्राह्मण कैसे अब्राह्मण हो सकता है जिसका उल्लेख बाबासाहेब अम्बेडकर मनुस्मृति के हवाले से इस प्रकार करते हैं-

''वे ब्राह्मण जो हवन कव्य पाठ नहीं ले सकते हैं मैं उन्हें बताता हूँ। जो शुल्क लेकर पढ़ाएँ और शुल्क देकर पढ़ें। जो शूद्र विद्यार्थी को पढ़ाए और जिसका गुरू शूद्र हो, जो कटुभाषी, कुल्य या विधवा का पुत्र हो।[5]

जब ब्राह्मण तक इन चीजों से नहीं बच पाया तो औरों के बारे में क्या कहा जाय? ब्राह्मण के ऊपर शास्त्र की यह नकेल चिन्ता जनक तो है ही चिन्तनीय भी है। वैसे इस भारतीय समाज में 'कुजात' होकर कौन रहना चाहता है? तो जातीय दायरे में बने रहने का प्रश्न जब इस तरह प्रबल हो जाएगा तो उस स्थिति में किस तरह का समाज बनेगा और जैसी संस्कृति निर्मित होगी। यह पहेली कितनी उलझी हुई है, और कितनी जटिल है इससे हम अपरिचित नहीं हैं। मूल बात तो यह है कि भारत में लोकतंत्र, स्वतंत्रता और आधुनिकता जैसे मूल्य तब तक सार्थक नहीं हो सकते जब तक जाति और वर्ण व्यवस्था की वर्चस्व वाली राजनीति चलती रहेगी। और हुआ भी यही आज भी जाति-धर्म और लिंग की राजनीति लगभग बनी हुई है। इसकी भी दो बातें कारण स्वरूप हैं-पहला तो यह कि जाति-धर्म-लिंग की राजनीति और तत्सम्बंधी नेताओं और विचारकों को हल्के में लिया गया, उनका दमन किया गया और अन्ततः उनकी हँसी भी उड़ाई गयी। जनता के बीच में उन्हें और उनके विचारों को जाने नहीं दिया गया। यह सच सिद्धों, नाथों, बुद्ध, कबीर, रैदास, दादू नानक, से लेकर अम्बेडकर तथा लोहिया तक का है।

दूसरा कारण-उपेक्षित, वंचित, शोषित जन को शिक्षा, रोजगार, राजनीति, सत्ता और सामाजिकता से जुड़ने का अवसर नहीं दिया गया। कोई ठीक फॉर्मूला नहीं बना। तथा भ्रम की स्थिति को बनाये रखा गया। सच तो यह है कि स्वतंत्र भारत की भूल-भुलैया में ही यह खोता रहा है।

यह इतना सहज संदर्भ नहीं है अन्यथा प्रयास तो 19वीं शताब्दी में भी हुए थे सुधारवादी संगठनों ने 'पत्तल-पानी' और 'भोज-भात' का नमूना तो रखा ही था और दूसरी ओर गाँधी का समानांतर प्रयास 'हरिजन सेवक संघ' के रूप में तो चल ही रहा था किंतु क्या हासिल हुआ और कितना हासिल हुआ, यह छिपा हुआ नहीं है। हम ऐसा भी नहीं कह सकते कि कुछ भी नहीं हुआ, किंतु बुनियादी तौर पर बड़ा परिणाम नहीं हासिल कर पाये और न ही कोई चेतना निर्मित हो पायी। इसके पीछे बाबासाहेब की यह टिप्पणी विचार करने के लिए बाध्य करती है-

''सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम के बिना अस्पृश्य कभी भी अपनी दशा में सुधार नहीं कर सकते।''[6]

एक तो यह और दूसरे प्रतिबद्धता का होना आवश्यक है। बाबासाहेब के अनुसार-वे धन्य हैं जो अनुभव करते हैं कि जिन लोगों में हमारा जन्म हुआ है उनका उद्धार करना हमारा कर्त्तव्य है। धन्य हैं वे जो गुलामी का खात्मा करने के लिए सब कुछ न्यौछावर करते हैं और धन्य हैं वे जो सुख और दुख, मान और सम्मान, और कष्ट रहेंगे जब तक अस्पृश्यों को उनके मानवीय जन्म सिद्ध अधिकार न मिल जाएँ'।''[7]

यही वो प्रतिबद्ध प्रेरणा है जिसको पाकर दलित-पीड़ित-शोषित जनता के लिए संघर्ष किया जाता है जिसके स्रोत डॉ. अम्बेडकर के विचारों में निहित हैं। स्पृश्य और अस्पृश्य ये दो ऐसी सच्चाइयाँ हैं जिनको समझे बिना कुछ भी समझ पाना संभव नहीं है। इसकी लम्बी परम्परा रही है। सच तो यह है कि केवल तीन ही वर्ण थे किन्तु चौथा वर्ण यानी शूद्र बड़ी सोच का परिणाम है। चूंकि हम इतिहास और परम्पराओं को ठीक से समझ नहीं पाये हैं और अधूरी जानकारी के साथ स्वंय ज्ञान को संबोधित करते हैं किन्तु जब बाबासाहेब सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड-13 और खण्ड-14 यानी शूद्र कौन थे, अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने खण्ड 7 में

इसका विशद वर्णन करते हैं तब आँखें खुल जाती हैं। पता चलता है कि सत्ताधर्मी धर्म और जाति की राजनीति ने शूद्रों को जन्म दिया अचानक भारतीय समाज की नव निर्मिति हुई। इसके बाद स्मृतियों और संहिताओं ने इन शूद्रों को शिक्षा, सत्ता, सामाजिकता से वंचित कर कमजोर बनाया ताकि इन पर शासन भी किया जा सके और इनकी सेवाएँ भी प्राप्त की जा सकें। इस संदर्भ में बाबासाहेब का अध्ययन विशेष मायने रखता है तथा अस्मिता की लड़ाई में बुद्ध, कबीर, रैदास, डॉ. अम्बेडकर और लोहिया को पढ़ने की जरूरत है। बाबासाहेब वैदिक वाङ्मय में घुसकर इन सच्चाइयों की पड़ताल करते हैं। किसी भी समाज का उत्थान और उसकी प्रगति इतिहास से भिन्न होकर नहीं हो सकता। ऐसे में बाबासाहेब का इतिहास अध्ययन पुराण और वेदों के अंतर्विरोधों का उद्घाटन अस्मिता विमर्श के लिए एक नया पाठ प्रस्तुत करता है। यह जानना जरूरी है कि हमारी जड़ें कहाँ हैं और कितनी फैली हैं। क्योंकि इस संदर्भ में एक बड़ी सच्चाई यह है कि शूद्रों के इतिहास का कोई अता-पता नहीं चलता है। अस्पृश्यता का गढंत क्या है उसको जाने बिना इससे लड़ना और मुक्ति पाना संभव नहीं है। वही सच नहीं है जो परोसा जाता रहा है बल्कि एक सच वह भी है जो उन्हीं पाठों और शास्त्रों में मौजूद है जिससे अस्पृश्य जनता अभी भी कम ही परिचित हो पायी है। सहस्रों वर्षों का इतिहास होगा किसी के लिए स्वर्णिम किंतु दलित-पीड़ित-वंचित शोषित जनता के लिए दुःखती रग है। उन इतिहासों और समाजशास्त्रों के भीतर क्या है यह भी जानना जरूरी है। क्या हमें रैदास की वाणी भीतर तक हिला नहीं देती है-

''पराधीनता पाप है
जानि लेऊ रे मीत।
रैदास दास पराधीन सौं
कौन करै है प्रीत
पराधीन को दीन क्या
पराधीन बे दीन
रैदास दास पराधीन को
सबहि समझै हीन।[8]
मानुषता को खात है
रैदास जात का रोग ।[9]
रैदास न मानुष जुड़ सकै
लौं जात न जात ।[10]

लेकिन कहाँ तक पहुँच पाई हैं उस हिस्से तक यह वाणी। परिवर्तन की चेतना को निर्मित करती संतों की वाणियों को अम्बेडकर अध्ययन के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। शास्त्र और जाति के वर्चस्व से किनारा करती हुई ये वाणियाँ समाज और सच को समझने का नया नजरिया प्रदान करती हैं। उसके भीतर वर्ण धर्म की जटिलता से निजात पाने का संदर्भ है। आज जब इस उतरशती में इन चीजों की पड़ताल करते हैं 'सामाजिक न्याय' और 'समता' की बात करते हैं तब जरूरी हो जाता है उस परम्परा और प्रतिरोध की विचारधारा तथा विचारकों से जुड़ना। ऐसे तो सब एक ही ईश्वर की संतान हैं और सबके मालिक एक ही हैं। किंतु दूसरा बड़ा सच है, जाति और धर्म का वर्चस्व और ईश्वर के नाम पर की जाने वाली राजनीति, जिसने प्रारंभ से ही हमारे जीवन और राजनीति को प्रभावित करने का काम किया है। यदि मान लीजिए तो श्रेष्ठ जातियों की सेवा में जिन्दगी गुजर जाएगी और नहीं मानिए तो ये आपको रहने तक नहीं देंगे। इसी लेख में बाबासाहेब के हवाले से हमने कहने की कोशिश की है कि अस्पृश्य को अपनी दशा में सुधार, सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए आमूल परिवर्तनवादी कार्यक्रम होना चाहिए। अब इसी मॉडल को बाबासाहेब ने संविधान में रखा तथा आरक्षण की नीति का निर्माण किया। सबसे बड़ी बात जो इसमें यह है कि आरक्षण की वजह से आर्थिक अवसर और सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित हो जाती है किन्तु दूसरी और यहीं से हम सामाजिकता में स्थान भी बनाने लगते हैं। कहना न होगा कि इससे भारतीय समाज और सत्ता के चेहरे पर बड़ा परिवर्तन आया है। तमाम पीड़ाओं और परेशानियों के बाद आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन में भी मध्य भूमिका निभाने लगता है आरक्षण अर्थ की सशक्तता समाज की अशक्तता को दूर कर देती है तथा शास्त्र का ताना-बाना भी ढ़ीला हो जाता है। यह तो इतिहास सच है कि सत्ता में रहने वाली शूद्र जातियों के साथ सामंत और पुरोहित तो लग जाते रहे हैं। शिवाजी जैसे व्यक्ति को प्रथमतया तिलक लगाने से मना करने वाले पुरोहित समाज का विकल्प एक पुरोहित ही बनता है तथा बाद में वही शिवाजी हिंदू रक्षक शासक के रूप में अपनी पहचान दर्ज कराते हैं इस मनोवैज्ञानिक सच को भी समझना जरूरी हो जाता है। खैर बाबासाहेब सामाजिक परिवर्तन को अनिवार्य रूप से मानते हैं। 'सामाजिक परिवर्तन' सामाजिक न्याय और आरक्षण के माध्यम से ही संभव हो पाता है अब देखिये, 'सामाजिक परिवर्तन और 'सामाजिक न्याय' से भले ही कम परेशानी होती है किंतु 'आरक्षण' तो बड़े-से-बड़े सहनशील गंभीर व्यक्ति-को भी तिलमिला देता है। और तो और इसे गिफ्ट माना जाता हैं। किंतु यह या तो नासमझी है या अभी भी वंचित समुदाय को मुख्य धारा में शामिल होते हुए नहीं देख सकने की मनः स्थिति है। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी वंचितों की स्थिति क्या है इसे एक बार तो देखना ही चाहिए। ऐसे में 'आरक्षण' और सामाजिक परिवर्तन दोनों संभव नहीं है। इस संदर्भ में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के कथन को सामने रखकर बात की जानी चाहिए, ''जब मेहनतकश जातियाँ इन आरक्षणों की मांग करती हैं, तो वह कोई नई बात या अजूबा नहीं है। आरक्षण की

मांग उन शासक जातियों और ज्यादतियों से सुरक्षा की मांग है जो मेहनतकश पर हर क्षेत्र में प्रभुत्व जमाना चाहती हैं, इस मांग के साथ शासक जातियों पर कोई ऐसी घृणित शर्तें नहीं लगाई गयी हैं।

इसी संदर्भ में बाबासाहेब जब यह लिखते हैं कि-

''मेहनतकश जातियों का आरक्षण की मांग के पीछे आशय यह है कि शासक जातियों के अधिकारों पर सीमा लगाई जाए, जिसके रहते वे सरकारी तंत्र पर नियंत्रण कर लेते हैं। शासक जातियाँ आरक्षण को बदनाम कर रही हैं ताकि उन लोगों की आवाज को ही दबा दें, जो उस पर जोर दे रहे हैं। वास्तविकता यह है कि आरक्षण वही चीज है जिसे अमरीकी निगरानी और नियंत्रण कहते हैं, जो प्रत्येक संविधान में रहना आवश्यक है जिससे लोकतंत्र के शत्रु उस पर काबिज होकर न बैठ जाए''[12]

आखिरी बात इस संदर्भ में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुसार-यदि संविधान में संरक्षण नहीं रखे गए तो शासक जातियों का मेहनतकश जातियों पर प्रभुत्व जारी रहेगा।[13]

आज जरूरी है इस विषय पर विमर्श की, अन्यथा जो' मार-काट' की स्थिति बनी हुई है वह असहनीय है। ऐसे कम ही सुलझे हुए लोग होंगे जो इस विषय पर सकारात्मक राय रखते होंगे। आरक्षण विवाद की बजाय आरक्षण विमर्श हो तो ज्यादा अच्छा होगा और संवाद की स्थिति बनेगी जिससे ग्रंथियाँ भी टूटेंगी और नयी सामाजिकता भी बनेगी। अब मनुस्मृति का विधान नहीं चल रहा बल्कि अम्बेडकर का संविधान चल रहा है किन्तु अब भी मनुस्मृति की स्मृतियाँ संस्कार रूप अंतस में बैठी हुई हैं जिससे 'आरक्षण', 'समता', 'सामाजिक न्याय' जैसे विषय परेशान कर देते हैं। परेशानी भी यही है क्योंकि 'जड़ता', 'वर्चस्व' और 'सत्ता' से जूझते ये शब्द यहाँ लोकतंत्र की स्थापना करने में अग्रसर हैं वहीं इसे लोकतंत्र का विरोधी माना जाने लगता है। कभी भारतीयता के नाम पर तो कभी संस्कृति और परम्परा के नाम पर। बाबासाहेब को लग रहा था कि ये मुद्दे बाद में जटिल हो जाएँगे इसलिए वे बहुत बेबाक ढंग से अपनी राय भी रखते हैं तथा उसकी परम्पराओं और इतिहास को साथ लिए चलते हैं। (इस संदर्भ में विस्तृत जानकारी रखनी हो तो बाबासाहेब सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड-17 परिशिष्ट को देख सकते हैं।)

''जब मेहनतकश जातियाँ इन आरक्षणों की मांग करती हैं, तो वह कोई नई बात या अजूबा नहीं है। आरक्षण की माँग उन शासक जातियों ज्यादतियों से सुरक्षा की मांग है जो मेहनतकश पर हर क्षेत्र में प्रभुत्व जमाना चाहती हैं, इस मांग के साथ शासक जातियों पर कोई ऐसी घृणित शर्तें नहीं लगाई गयी हैं।

आज के दौर में बाबासाहेब के होने का विशेष अर्थ है। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, बुद्ध, कबीर, रैदास और ज्योतिबा फूले, पेरियार की उसी परम्परा में शामिल हैं जो श्रमणों की रही है, मेहनतकशों की रही है। बल्कि बाबासाहेब अपनी पूर्ववर्ती और अनुवर्ती परम्परा को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में हैं। परिवर्तन और प्रतिरोध को आधार देने वाले बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की प्रासंगिकता तब तक रहेगी जब तक समाज में असमानता, शिक्षा, भेद-भाव, वर्चस्व और जाति-धर्म और लिंग की राजनीति चलती रहेगी। भारत के इतिहास में डॉ. अम्बेडकर ऐसे व्यक्ति हैं जो शोषक, शासकों वर्चस्वशाली-तबकों, जातिवादियों, पाखंडियों और अलोकतांत्रिकों को हमेशा एक तरफ भयभीत करते रहेंगे तथा दूसरी तरफ वंचितों, दलितों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, लोकतांत्रिकों, समतावादियों को साहस प्रदान करते रहेंगे और उनके संबल बने रहेंगे। मौजूदा वक्त परिवर्तन की संभावना का वक्त है ऐसे में डॉ. अम्बेडकर के विचारों-रचनाओं और सपनों से जुड़ने और जोड़ने का वक्त है। यद्यपि है यह कठिन काम, किन्तु मनुष्य यदि ठान ले तो क्या नहीं कर सकता है और डॉ. अम्बेडकर ने इतना विवेक तथा साहस तो दिया ही है।

संदर्भ सूची

1. कबीर ग्रंथावली: श्याम सुन्दरदास-साखी-40, पृष्ठ-36
2. उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज : ले. प्रो. चौथीराम यादव अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली-प्रथम सं. 2014, पृ.-18-19
3. वही-पृ.-103
4. और बाबासाहेब ने कहा था: राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली खण्ड-4, पृ.-2
5. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय-डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली खण्ड-13, पृष्ठ-139
6. वही खण्ड-13, पृष्ठ-150
7. वही खण्ड-14, पृष्ठ-82
8. रैदास ग्रंथावली-एन.सिंह, साखी सं.225-226 पृष्ठ-159
9. वही, साखी सं. 155, पृ.-152
10. वही, साखी-160, पृ.-153
11. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूण वाङ्मय-खण्ड. 17, पृ.-74
12. वही- खण्ड-17, पृष्ठ-77-78
13 वही-खण्ड-17, पृष्ठ-80

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में सहायक प्रोफेसर हैं)

सामाजिक परिवर्तन के महानायक बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

■ भावना सरोहा

अप्रैल माह की चौदह तारीख सामाजिक परिवर्तन के उन महानायक का जन्म दिन है, जिन्होंने हजारों साल से अंधकारमय जिंदगी जीने को अभिशप्त करोड़ों शोषित-पीड़ित जनता के जीवन में रोशनी भर दी। 14 अप्रैल, 1891 को म. प्र. के महू छावनी में जन्मे भीमाबाई और रामजीराव के पुत्र भीमराव रामजी अम्बेडकर ही आगे चलकर भारतीय संविधान के निर्माता बने। 'महार' नामक अछूत समझी जाने वाली जाति में जन्म लेने के कारण बचपन से ही डॉ. अम्बेडकर को जातिगत दंश झेलने पड़े थे। सूबेदार के बेटे होने के बावजूद केवल एक 'अछूत' होने के चलते उन्हें स्कूल-कॉलेज में प्रवेश लेने और अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। नौकरी करने के दौरान भी उन्हें कई तरह के जातिवादी भेदभाव का शिकार होना पड़ा। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ द्वारा उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृति उपलब्ध कराना बाबासाहेब के जीवन का एक महत्वपूर्ण बिन्दु साबित हुआ। अमेरिका के प्रतिष्ठित कोलम्बिया विश्वविद्यालय से उन्होंने अर्थशास्त्र में एम.ए. और बाद में पी.एच.डी. की डिग्री हासिल की। डॉ. अम्बेडकर ने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से भी पढ़ाई की। वे अपने समय के सर्वाधिक पढ़े-लिखे और बौद्धिक व्यक्तित्वों में शुमार किए जाते थे। डी.एस.सी., एल.एल.डी., डी.लिट. और बैरिस्टर एट लॉ जैसी डिग्रियों के मालिक बाबासाहेब कई भाषाओं के ज्ञाता थे। **अंग्रेजी में उनकी रचनावली** 'डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेज' नाम से महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित की गई है तथा **हिन्दी में यह 'बाबासाहेब डॉक्टर अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय' के नाम से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा** प्रकाशित की गई है। उनके विपुल-वैविध्यपूर्ण लेखन और कार्यों को देखने से पता चलता है कि वे एक ही साथ अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता, मानवशास्त्री, भाषाविद्, समाज वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, इतिहासकार, धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ, पत्रकार, संगठनकर्ता और परिवर्तनकामी क्रांतिकारी योद्धा थे। 'ऐनीहिलेशन ऑफ कास्ट', 'द अनटचेबल्स', 'हू वेयर द शूद्राज' और 'बुद्धा एंड हिज धम्मा' उनकी बेहद प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। उन्होंने समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, नृतत्वशास्त्र, विज्ञान, इतिहास, साहित्य, कानून, राजनीति, संगठन, आन्दोलन, स्त्री-प्रश्न समेत अन्यान्य विषयों पर तार्किक और वैज्ञानिक लेखन किया। उनका पूरा जीवन चिंतन-मनन, बौद्धिक लेखन, संगठन, आन्दोलन और शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध एक लोकतान्त्रिक समाज बनाने के प्रयत्नों में ही बीता।

सड़ी-गली व्यवस्था में सुधार नहीं आमूलचूल परिवर्तन हो

भारतीय सामाजिक संरचना को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने बहुत गहराई से देखा-समझा। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था- सदियों से जाति, धर्म, नस्ल, वर्ग और लिंग के नाम पर दबाए-सताए गए वंचित तबके की मुक्ति और हर तरह के शोषण-उत्पीड़न को खत्म करके एक समतामूलक समाज की स्थापना। पूरी जिंदगी डॉ. अम्बेडकर अपने इस सपने को पूरा करने में लगे रहे। 'महाड़ सत्याग्रह', 'मनुस्मृति दहन', और 'कालाराम मंदिर प्रवेश' जैसे आन्दोलनों द्वारा उन्होंने दलित समुदाय के मन में हजारों साल से चली आ रही गुलामी से मुक्ति पाने का संकल्प पैदा

किया। डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष बहुआयामी था। वे बौद्धिक सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर मुस्तैद थे। भारत में पहला मजदूर संगठन बनाने का श्रेय उन्हें ही है। 1936 में उन्होंने 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' बनाई थी। इसके अलावा 'ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन', 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा', 'पीपुल्स सोसाइटी', 'रिपब्लिकन पार्टी आफॅ इंडिया', 'दि बुद्धिस्ट सोसाइटी ऑफ इंडिया' जैसे संगठनों के माध्यम से बाबासाहेब ने भारतीय समाज और राजनीति में परिवर्तन की तूफानी लहर पैदा की। अपनी वैचारिकी को रचनात्मक रूप देते हुए उन्होंने 'मूकनायक', 'जनता' और 'बहिष्कृत भारत' जैसी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। सदियों से सोये हुये वंचित तबके को जगाने के लिए बाबासाहेब ने परिवर्तनकारी नारा दिया- ''शिक्षित बनो ! संगठित रहो !! संघर्ष करो !!!'' कहना न होगा कि डॉ. अम्बेडकर के साथ लाखों-करोड़ों शोषित-पीड़ित जनता जुड़ती गई और उनका आन्दोलन मजबूत होता गया। 1930 के बाद गांधी के समानान्तर बाबासाहेब का व्यक्तित्व खासा लोकप्रिय और प्रभावशाली था। गांधी वस्तुत: सामाजिक सुधार चाहते थे लेकिन बाबासाहेब सड़ी-गली व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन चाहते थे। गांधी वर्ण-व्यवस्था के विरोधी नहीं थे, वे केवल छुआछूत को खत्म करने के लिए बोलते भर थे। गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर ने वंचित समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए गांधी के विपरीत अपनी बातें जोरदार ढंग से रखीं। लेकिन राजनीतिक हिस्सेदारी के सवाल पर गांधी जी ने आमरण अनशन शुरू कर दिया और बाबासाहेब को झुकने के लिए मजबूर किया। न चाहते हुए भी बहुत बुझे मन से डॉ. अम्बेडकर को इसकी परिणति 'पूना-पैक्ट' के रूप में करनी पड़ी।

स्त्री उत्थान से ही समाज का सही विकास

स्वतन्त्रता के बाद बनी सरकार में बाबासाहेब को भारत का पहला कानून मंत्री बनने का गौरव हासिल हुआ। फिर वे संविधान निर्माण समिति के अध्यक्ष बने और भारत का संविधान तैयार किया। भारतीय संविधान समता, स्वतन्त्रता और बंधुत्व पर आधारित है और हर तरह की गैर-बराबरी के खिलाफ समतामूलक समाज के निर्माण पर बल देता है। बाबासाहेब स्त्री-मुक्ति के भी उतने ही बड़े पैरोकार थे। उनका मानना था कि स्त्री-उत्थान से ही समाज का सही विकास हो सकता है। हिंदू औरतों की मुक्ति के दस्तावेज के रूप में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' तैयार किया, जो कालांतर में स्त्री-मुक्ति का सबसे बड़ा माध्यम साबित होता। उनका मानना था कि 'मैंने संविधान बनाकर देश के लिए वह योगदान नहीं किया है जो 'हिंदू कोड बिल' के द्वारा करूंगा। लेकिन सवर्ण हिंदुओं के विरोध और कांग्रेस के पीछे हटने के कारण बाबासाहेब का यह सपना पूरा नहीं हो सका और उन्होंने इसके विरोध में तुरंत इस्तीफा दे दिया। दुनिया के इतिहास में अपनी तरह की यह पहली घटना थी कि किसी व्यक्ति ने स्त्री-मुक्ति के सवाल पर अपना पद छोड़ दिया हो। डॉ. अम्बेडकर दलितों की गुलामी का कारण हिंदू धर्म की वर्ण-व्यवस्था और गैर-बराबरी को मानते थे। इसलिए इससे मुक्ति के लिए उन्होंने 1935 में ही यह घोषणा कर दी थी, ''मुझे खेद है कि मैंने हिंदू धर्म में जन्म जरूर लिया है, जो कि मेरे वश की बात नहीं थी, परन्तु यह मेरे वश की बात है कि मैं हिंदू रहकर मरूँगा नहीं।'' 14 अक्तूबर, 1956 (अशोक विजयी दशमी) को नागपुर में अपने लाखों अनुयायियों के साथ उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। आगे का अपना पूरा जीवन वे बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित करना चाहते थे। लेकिन खराब स्वास्थ्य के चलते वे ज्यादा दिन जीवित नहीं रह सके और 06 दिसम्बर, 1956 को दिल्ली में 26, अलीपुर रोड़ स्थित निवास पर उनका परिनिर्वाण हो गया। उनका अंतिम संस्कार बौद्ध रीति-रिवाज से मुंबई स्थित दादर (चैत्य भूमि) पर लाखों लोगों की उपस्थिति में किया गया। डॉ. अम्बेडकर ने दलित-आदिवासी और पिछड़े वर्ग (ओ.बी.सी.) के लिए शिक्षा एवं नौकरियों में समान अवसर प्रदान करने के लिए संविधान में आरक्षण जैसी व्यवस्था दी, जिसकी बदौलत पिछले साठ वर्षों में यह तबका पढ़-लिखकर आगे आया है। आज शिक्षा, नौकरी, व्यापार, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में वंचित समाज की उपस्थिति दिखने लगी है। देश के हर विश्वविद्यालय में दलित-आदिवासी विमर्श और अम्बेडकर दर्शन-चिंतन पाठ में शामिल हो गया है। वास्तव में बाबासाहेब के चिंतन-दर्शन में हर जाति, वर्ग, समुदाय यानि पूरी मानवता के लिए मुक्ति और उत्थान के बीज समाहित हैं लेकिन अफसोस इस बात का है कि उन्हें केवल दलित वर्ग के मसीहा के रूप में ही स्थापित कर दिया गया है। आज जरूरत इस बात की है कि बाबासाहेब के विचारों को इस देश का हर तबका अपनाए, तभी सम्यक विकास और समरसता स्थापित हो सकती है। आजादी के चार दशक बाद 1990 में सरकार ने बाबासाहेब को देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा। सच में लाखों-करोड़ों पीड़ित जनता के मुक्तिदाता बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक बेशकीमती रत्न ही तो हैं।

(लेखिका इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि.वि., नई दिल्ली में पी.एच.डी. की शोध-छात्रा हैं और अम्बेडकरी आंदोलन से जुड़ी हुई हैं।)

आधुनिक भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में डॉ. अम्बेडकर का योगदान

■ संजय कुमार एवं डॉ. जुगल किशोर

यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि एक स्वस्थ इंसान ही स्वस्थ परिवार, समाज और स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। 1946 में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गयी स्वास्थ्य की परिभाषा ''वह पूर्ण अवस्था जिसमें एक व्यक्ति न केवल बीमारी और दुर्बलता से मुक्त हो बल्कि वह शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से अपने आपको स्वस्थ और खुशहाल महसूस करता हो'' से भी इस बात की पुष्टि होती है। स्वस्थ रहना और बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं पाना हमेशा से मानव की मूलभूत आवश्यकता रही है। भारतीय इतिहास में आजादी से पूर्व अनेक शासकों द्वारा अपने नागरिकों को उत्तम स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की कोशिश की जाती रही है, किन्तु भारतीय समाज के असमानता पर आधारित होने और किसी भी शासक द्वारा कोई सामान्य स्वास्थ्य नीति नहीं बनाये जाने के कारण, अधिकांश स्वास्थ्य सेवाएं एक विशेष वर्ग तक ही सीमित रहीं। औपनिवेशिक भारत में पहली बार सभी के लिए समान स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की नीतियां सामने आईं। अंग्रेजों ने अपने सैनिकों और यूरोपीय नागरिकों के लिए उचित स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए बंगाल चिकित्सा सेवा और भारतीय चिकित्सा सेवाएं प्रारम्भ कीं। आधुनिक भारत में सभी भारतीयों को समान स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के महत्व को सबसे अधिक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने समझा। उनका मानना था, **''एक असमान समाज, जिसका एक भाग न सिर्फ भूखे-पेट सोता हो, जानवरों से बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर हो और जिसे सार्वजनिक स्रोतों से पानी तक पीने का अधिकार न हो, किसी भी हालत में एक बेहतर और मजबूत राष्ट्र भारत का निर्माण नहीं कर सकता।''** उनके अनुसार एक स्वस्थ भारत के निर्माण के लिए जरुरी है कि उन सभी लोगों को, जो इन मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहे हैं, उन्हें यथाशीघ्र ये सुविधायें मुहैया करायी जाएं। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ-साथ मानवीय स्वतंत्रता और समानता के लिए भी संघर्ष किया। बाबासाहेब डॉ बी. आर. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में सभी को पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान किये जाने को शामिल करके उन्हें वैधानिक स्वरुप प्रदान किया, जो भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। इसलिए भारतीय स्वास्थ्य के विकास और राष्ट्र निर्माण में उनका योगदान अतुलनीय है।

औपनिवेशिक काल में भारत में स्वास्थ्य की स्थिति

अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए व्यापारी बनकर आये थे किन्तु तत्कालीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक कमजोरियों का लाभ उठाते हुए उन्होंने भारत की राजनीति में भी दखल देना शुरू कर दिया। प्लासी के युद्ध (1757) से वह शासक बनते चले गए और देखते ही देखते सम्पूर्ण भारत को उन्होंने अपने कब्जे में ले लिया। भारत में अंग्रेजी शासन और व्यापार को बनाये रखने तथा उसे और अधिक मजबूत बनाने के लिए जो यूरोपीय सैनिक, अधिकारी और नागरिक भारत में रह रहे थे, उन्हें भिन्न मौसम और जलवायु होने के कारण विभिन्न

प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था, जिसके चलते बहुत सारे यूरोपीय सैनिक और नागरिक प्रत्येक वर्ष भारतीय द्वीपीय बीमारियों से मर जाते थे। अपने इन सैनिकों और नागरिकों को स्वस्थ रखने के लिए अंग्रेजों को भारत में एक नई और वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति की अति आवश्यकता थी, क्योंकि प्रचलित भारतीय पद्धतियों को वह वैज्ञानिक और कारगर नहीं मानते थे, इस नई चिकित्सा पद्धति को पश्चिमी चिकित्सा पद्धति के नाम से जाना गया, जिसे आगे चलकर बंगाल चिकित्सा पद्धति और भारतीय चिकित्सा पद्धति के नाम से भी जाना गया। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इस नवीन चिकित्सा पद्धति में प्रमुख रूप से यूरोपीय सैनिकों और यूरोपीय नागरिकों के स्वास्थ्य हितों का ख्याल रखा जाता था तथा अधि काश स्वास्थ्य चिकित्सा सुविधाएं शहरी तथा अर्ध-शहरी इलाकों में ही विकसित की गईं। इनका लाभ अंग्रेजों के समर्थक जमींदार तथा बुर्जुआ वर्ग तक ही सीमित रहा। आम भारतीयों को इसका लाभ केवल महामारियों के समय ब्रिटिश-राज को आर्थिक नुकसान, कम राजस्व वसूली और कम उत्पादन से होने वाली हानि से बचाने के लिए दिया जाता था।

यहां पाठकों को यह याद दिला दें कि यह वह समय था जब पूरे देश में आजादी के लिए संघर्ष चल रहा था और पूरा देश अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए एकजुट हो रहा था, तो दूसरी ओर भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसे पीने का पानी, भरपेट भोजन, शुद्ध वातावरण और सदियों से जानवरों से भी बद्तर जीवन जीने से मुक्तिपाने के लिए तड़प रहा था। उनके लिए जीवन की आजादी देश और सीमाओं की आजादी से कहीं ज्यादा जरुरी थी। उनकी इस आजादी के संघर्ष का नेतृत्व समय-समय पर अनेकों महापुरुषों ने किया, जिससे दबे-कुचले लोगों की बात आगे बढ़ी, और इसी का नतीजा रहा कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने भी इस संघर्ष में अपनी ताकत झोंक दी, जिसके फलस्वरूप उन्हें भारत का संविधान लिखने का मौका हासिल हुआ। इस तरह बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सदियों से वंचित लोगों को अपनी जोरदार पहल से संवैधानिक हक हासिल कराने में कामयाब हुये।

''प्रचलित भारतीय पद्धतियों को वह वैज्ञानिक और कारगर नहीं मानते थे, इस नई चिकित्सा पद्धति को पश्चिमी चिकित्सा पद्धति के नाम से जाना गया, जो आगे चलकर बंगाल चिकित्सा पद्धति और भारतीय चिकित्सा पद्धति के नाम से भी जाना गया। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इस नवीन चिकित्सा पद्धति में प्रमुख रूप से यूरोपीय सैनिकों और यूरोपीय नागरिकों के स्वास्थ्य हितों का ख्याल रखा जाता था तथा अधिकांश स्वास्थ्य चिकित्सा सुविधाएं शहरी तथा अर्ध-शहरी इलाकों में ही विकसित की गईं। इनका लाभ अंग्रेजों के समर्थक जमींदार तथा बुर्जुआ वर्ग तक ही सीमित रहा। आम भारतीयों को इसका लाभ केवल महामारियों के समय ब्रिटिश-राज को आर्थिक नुकसान कम राजस्व वसूली और उत्पादन से होने वाली हानि को कम करने से बचाने के लिए दिया जाता था।''

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह बात सिद्ध हो चुकी थी कि अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन के दौरान उन मानवीय हितों की अनदेखी की है जिनके संरक्षक और समर्थक होने का दावा वो अब तक पूरी दुनिया के सामने कर रहे थे। इसलिए अन्य पहलुओं के साथ-साथ भारतीय स्वास्थ्य के क्षेत्र में जैसे स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति और उनका स्तर, स्वास्थ्य प्रतीक, उनकी वास्तविक स्थिति का पता लगाकर उनके सुधार के लिए सुझाव देने हेतु एक राष्ट्र स्तरीय समिति 'स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति (1943-1946)' की स्थापना सर जोसेफ भोर की अध्यक्षता में, ब्रिटेन के सुझाव पर भारत की अंग्रेजी सरकार ने की (इसे भोर समिति के नाम से जाना जाता है)। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि भारतीय स्वास्थ्य की स्थिति संतोषजनक नहीं है बल्कि कई मामलों में तो बहुत ही दयनीय है।

भोर समिति की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रत्येक वर्ष लाखों लोग विभिन्न बीमारियों से मर जाते हैं, जिसमें हैजा, चेचक और प्लेग से मरने वालों की संख्या कुल संख्या के 40 प्रतिशत् से भी अधिक रहती है। सर भोर समिति के निष्कर्षों के अनुसार बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति बदतर थी। भारत

में होने वाली कुल मौतों में से 48 प्रतिशत 10 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों का था, जबकि इंग्लैंड और वेल्स में यह केवल 10 फीसदी था। इसके अलावा, मातृ मृत्यु दर भारत में 20 प्रति 1000 प्रसव थी, जबकि इंग्लैंड में 3 प्रति 1000 प्रसव थी। रिपोर्ट में मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और जीवन प्रत्याशा दर की ब्रिटिश भारत और अन्य विकसित देशों के साथ तुलना की गई और पता चला कि वे भारत में कई गुना अधिक थे।

तालिका : विभिन्न देशों के साथ भारतीय मृत्यु दर और जीवन प्रत्याशा की तुलना:-

देश	मृत्यु दर	शिशु मृत्यु दर	जीवन प्रत्याशा दर	
			नर	मादा
न्यूजीलैंड	9.1	31	65.04	67.88 (1931)
ऑस्ट्रेलिया	9.4	38	63.48	67.14 (1932-34)
दक्षिण अफ्रीका	10.1	37	57.78	61.48 (1925-27)
कनाडा	10.2	76	59.33	61.59 (1924-31)
इंग्लैंड एण्ड वेल्स	11.4	58	58.74	62.88 (1930-32)
इटली	14.2	109	53.76	56.0 (1928-32
फ्रांस	15.0	65	54.30	59.02 (1928-34)
जापान	17.0	106	44.82	46.54 (1926-30)
संयुक्त राज्य अमेरिका	9.6	54	53.33	56.09 (1929-31)
जर्मनी	11.7	64	59.86	62.75 (1932-34)
ब्रिटिश भारत	22.4	162	26.91	26.59 (1921-30)

स्रोत: स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति (भोर समिति) की रिपोर्ट, 1946, भारत सरकार।

आजादी के समय खराब स्वास्थ्य नीतियों के कारण :

भोर समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि अंग्रेज भारत में आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं को आवश्यकतानुसार विकसित नहीं कर पाए जबकि पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियां संरक्षण के अभाव में विलुप्त हो चुकी थीं। देश में कुल 47,400 डॉक्टर उपलब्ध थे, जिनमें से केवल 13,000 सरकार और अन्य एजेंसियों द्वारा संचालित संस्थानों में थे, इनमें 75 प्रतिशत से अधिक शहरी क्षेत्रों में थे और ग्रामीण क्षेत्रों में इनका वितरण बहुत कम था। औसतन प्रति रोगी के लिए 45 सेकंड समर्पित थे। चिकित्सा और नर्सिंग सहायता की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं थी। 1000 भारतीय आबादी के लिए बिस्तर, डॉक्टर और नर्स की उपलब्धता संयुक्त राज्य अमेरिका और इंग्लैंड एण्ड वेल्स की तुलना में कई गुना कम थी। इतना ही नहीं भारत में शहरों की कुल जनसंख्या के केवल 6 प्रतिशत् को पोर्टेबल पानी की आपूर्ति थी। ग्रामीण क्षेत्रों और उभरते शहरी क्षेत्रों में पानी की आपूर्ति पूर्णत: अल्पविकसित थी, जबकि कुल जनसंख्या का 3 फीसदी में ही उचित सीवरेज प्रणाली थी। पोषण, जिसका व्यक्ति और समुदाय की उत्पादक क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है, बहुत कम लोगों को प्राप्त था। आजादी के पूर्व 75 प्रतिशत से अधिक शारीरिक विकलांगता, पौष्टिक, पर्याप्त, गुणात्मक और मात्रात्मक भोजन के साथ ठीक किया जा सकता था, किन्तु लोगों में भोजन खरीदने का सामर्थ्य नहीं था क्योंकि उनकी औसत आय बहुत कम थी। सामान्य और स्वास्थ्य शिक्षा का देश में पूर्णत: अभाव था। आम बीमारियों जैसे-मलेरिया, प्लेग, कुष्ठ रोग, निमोनिया, चेचक, अंधापन, तपेदिक, यौन रोग, हैजा, आंत्रशोथ, हुकवर्म आदि की व्यापकता थी जो विशेष रूप से गरीब और दलित लोगों को अधिक प्रभावित करते थे।

स्वास्थ्य देखभाल ओर पोषण में भेदभाव ब्रिटिश काल से ही शुरू है : स्वास्थ्य सुविधाओं के उपभोग में व्यक्तिगत, धार्मिक, जातिगत, लिंग और क्षेत्रीय असमानता वर्षो से कायम थी। यह देखा गया है कि एक ही देश में स्वास्थ्य के मामले में लोग दो अलग-अलग दुनियाओं में रहते थे। गरीब, पिछड़े, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोग कुपोषण और विभिन्न रोगों का कई गुना ज्यादा बोझ सहन कर रहे थे। वे समाज के अन्य समूहों की तुलना में सार्वजनिक सुविधाओं पर निर्भर थे। ब्रिटिश सरकार समाज के इन समूहों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए उत्सुक नहीं थी। महिला स्वास्थ्य की स्थिति भी ब्रिटिश भारत में बहुत खराब थी। उनको अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल और पोषण के साथ-साथ भेदभाव और हिंसा का भी सामना करना पड़ता था, यहाँ तक कि महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने के लिए विशेष रूप से अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े समुदायों, कमजोर वर्गों, अल्पसंख्यकों और ग्रामीण क्षेत्रों में अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं में कमी थी, वे काफी हद तक सामाजिक व्यवस्था से बाहर थी। इसलिए सर भोर समिति ने रोगों की रोकथाम और उपचार के लिए आवश्यक सुविधाओं के साथ सकारात्मक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सभी नागरिकों को अपनी क्षमता के बावजूद एक संगठित स्वास्थ्य सेवा के प्रावधान की बात कही। भोर समिति ने बिना किसी भेदभाव के सभी को समान और पर्याप्त स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

भोर समिति ने सुझाव दिया कि राज्य को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की जिम्मेदारी अपने हाथों में लेनी चाहिए और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने वाले निजी क्षेत्र को खत्म कर देना चाहिए। सभी को बेहतर और पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं बिना किसी भेदभाव के उनके नजदीक प्रदान की जानी चाहिए, साथ ही कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए जो पैसे के अभाव में स्वास्थ्य सेवाओं के लाभ से वंचित रहे। स्वास्थ्य विकास योजना को राष्ट्रीय विकास की योजना का प्रमुख अंग होना चाहिए और सरकारी राजस्व को इसके विकास में लगाना चाहिए। इसके लिए कुल जीडीपी का कम से कम 5 प्रतिशत् करना होगा।

भोर समिति के सारे सुझाव विश्व स्वास्थ्य संगठन के सुझावों से मिलते-जुलते थे।

डॉ. बी. आर. अम्बडेकर का स्वास्थ्य-सेवाओं के विकास में योगदान

भोर समिति के सुझाव अंग्रेजी शासन के लिए थे किन्तु आजाद भारत और उस समय के भारतीयों में भारत में डॉ. बीआर. अम्बेडकर एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जो विभिन्न लेखों, वर्गों और संसद में बहस के माध्यम से तार्किक तरीके से ये समझाने में सक्षम थे कि सभी का उत्तम स्वास्थ्य, देश में शांति, समानता, और विकास के लिए महत्वपूर्ण है। उन्होंने सार्वजनिक स्वास्थ्य के महत्व को समझते हुए संविधान के माध्यम से सभी के लिए बिना किसी भेदभाव के सुरक्षा और स्वास्थ्य के अधिकार की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए, अनुच्छेद 14 एवं 15 के तहत् एक मौलिक अधिकार दिया और अनुच्छेद 21 में जीवन के लिए अधिकार, समानता और बिना भेदभाव, अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता उन्मूलन के तहत् कुछ प्रासंगिक मौलिक अधिकारों के साथ-साथ अनुच्छेद 23 में मानव तस्करी और रोजगार के लिए मजबूर करना निषेध, अनुच्छेद 24 कारखानों में बच्चों के रोजगार का निषेध, काम के घंटे और स्वास्थ्य सेवाएं आदि। राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के तहत् सुविधाओं और अवसरों की असमानता को खत्म करने अनुच्छेद 38, सभी श्रमिकों, पुरुषों, महिलाओं के स्वास्थ्य के रूप में सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्थिति उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करने और बच्चों के लिए अनुच्छेद 39, मातृत्व राहत अनुच्छेद 42, मानवीय स्थितियों, शिक्षा, काम और कुछ मामलों में सार्वजनिक सहायता के लिए अनुच्छेद 41, सही पोषण के स्तर और जीवन स्तर में सुधार अनुच्छेद 47, रक्षा और पर्यावरण अनुच्छेद 48ए में सुधार, और कुछ सहवर्ती प्रत्येक नागरिक, महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं आदि को रद्द करना, और जीवन रक्षा के लिए और प्राकृतिक पर्यावरण में सुधार के लिए अनुच्छेद 51 आदि जैसे अनेक प्रमुख विषयों को संविधान में शामिल करके न सिर्फ उन्हें महत्व दिया, बल्कि इनकी जो गारंटी भारत में भोर समिति रिपोर्ट और विश्व स्वास्थ्य संगठन नहीं दे पाए थे उनकी गारंटी प्रदान की। डॉ. अम्बेडकर संविधान के विभिन्न खंडों के माध्यम से भोर समिति की रिपोर्ट में वर्णित सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान करने में सक्षम साबित हुए । जातीय समानता और सामाजिक न्याय का उनका विचार व्यक्ति के मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मौलिक है। इस प्रकार डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को मानव के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्पादक जीवन के लिए पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए और विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा वर्णित स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने में एक महान् दूरदर्शी कहा जा सकता है। इतना ही नहीं आजकल स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए चल रहे अधिकार आंदोलन को न सिर्फ उनकी ही दूरदर्शिता का परिणाम माना जा रहा है, बल्कि इसे उनके संवैधानिक प्रावधानों से ही शक्ति मिल रही है, जिसके लिए भारतवासी हमेशा उनके आभारी रहेंगे।□

> **डॉ. अम्बेडकर संविधान के विभिन्न खंडों के माध्यम से भोर समिति की रिपोर्ट में वर्णित सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान करने में सक्षम साबित हुए ।**

(लेखक द्वय सर्व श्री कुमार, दिल्ली वि.वि. में पी.एच.डी. स्कॉलर हैं व डॉ. किशोर, मौलाना आजाद मेडिकल कालेज में प्रोफेसर हैं)

> **"आपको अपने लक्ष्य की पवित्रता में अडिग विश्वास होना चाहिए। आपका उद्देश्य महान एवं उच्च है। आपका मिशन गौरवमय है। धन्य हैं वे लोग जो इन लोगों के प्रति कर्तव्यनिष्ठ हैं, जिसमें उनका जन्म हुआ है। गौरवशाली हैं वे जो दासता में जकड़े हुए लोगों की स्वतंत्रता के लिए महान संकटों, हृदय विदारक अपमानों, तूफानों और जोखिमों के होते हुए भी तब तक अपना संघर्ष जारी रखते हैं जब तक दलित व शोषित जन अपने मानवीय अधिकारों को प्राप्त नहीं कर लेते।"**
>
> **-डॉ. बी.आर. अम्बेडकर**

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक न्याय

■ **निलीमा के. ताकसांडे**

डॉ. अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महू छावनी (मध्य प्रदेश) में सूबेदार रामजी सकपाल के घर हुआ था। विश्व के सामाजिक क्रांतिकारियों की श्रेणी में अग्रणी रहे इस महान युग पुरुष ने भारतवर्ष में प्रचलित हजारों वर्षों से चली आ रही सामाजिक-कुरीतियों एवं सामाजिक-अन्याय को जड़ से समाप्त कर हजारों वर्षों से त्रसित पद्दलितों और अपमानित अस्पृश्यों को सामाजिक न्याय दिलाया। डॉ. अम्बेडकर देशवासियों को समता, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व के आदर्शों का मार्ग दिखाकर वर्गविहीन एवं जातिविहीन आदर्श समाज की स्थापना के उद्देश्य से घोर विषम परिस्थितियों में जीवन-पर्यन्त कड़ा संघर्ष किया।

बाबासाहेब ने भारतीय इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र, मानवशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानून आदि विषयों का गहन अध्ययन किया। समाज में प्रचलित कुरीतियों को उन्होंने देखा ही नहीं अपितु स्वयं झेला, उनके बारे में सोचा और दृढ़ निश्चय करके उनके विरुद्ध विद्रोह किया। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन के अन्त तक अनवरत संघर्ष के बाद देश को बताया कि यदि ये सामाजिक कुरीतियां दूर नहीं हुई तो भारत भविष्य में कितने टुकड़ों में बंटेगा और इसका क्या स्वरूप होगा यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता। डॉ. अम्बेडकर ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद देश में व्याप्त इस सामाजिक अन्याय के रहस्य को समझा कि आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रता तब तक व्यर्थ होगी जब तक कि समाज में सामाजिक न्याय व्याप्त न हो।

डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की धारणा

डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन (1891-1956) संघर्ष तथा सामाजिक अन्याय के विरूद्ध सामाजिक न्याय की खोज की एक जीवन्त गाथा है, और इस संघर्ष में उन्हें सफलता भी मिली। वे संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष और भारत के विधि मंत्री बने। डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनैतिक लोकतंत्र अधूरा है। संविधान सभा में 29 अप्रैल 1947 को सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रस्ताव को स्वीकार कर संविधान सभा ने न केवल अस्पृश्यता को कानूनी रूप से समाप्त करने की घोषणा ही नहीं की बल्कि इसको दंडनीय अपराध भी करार दिया। इस निर्णय को भारतीय इतिहास का गौरवशाली अध्याय बताते हुए सारे संसार में इसकी मुक्त कंठ से प्रंशसा की गई। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जब सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र में कूदे तो वह भारतवर्ष के उच्च शिक्षा प्राप्त किये व्यक्ति थे जिन्होंने देशी एवं विदेशी उपाधियां प्राप्त की थी। उनका व्यक्तित्व संसार के महान् पुरुषों के व्यक्तित्व का मिश्रण था। उनके व्यक्तित्व में संसार के महान् सामाजिक क्रांन्तिकारी ज्योतिबा फूले जैसे क्रान्तिकारियों के विचार समाहित थे, तो गौतम बुद्ध जैसी धामिर्क -क्रान्ति का दृढ़ निश्चय था। डॉ अम्बेडकर ने कई वर्षों तक जनजागरण के विभिन्न माध्यमों से समाज में जागृति लाकर सर्व प्रथम 'महाड़ तालाब का आन्दोलन' प्रारम्भ किया जहाँ सदियों से पद दलितों को इस तालाब का पानी पीने के लिये भी नहीं मिल पाता था। इसी के साथ बाबासाहेब द्वारा किया गया 'कालाराम मन्दिर का आन्दोलन' भी सामाजिक क्रान्ति के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। 1931 से 1933 तक लन्दन में हुई तीनों गोलमेज क्रॉन्फेंसों की चर्चा तो बहुत ही उल्लेखनीय है जहाँ बाबासाहेब ने एक ओर तो देश की स्वतंत्रता हेतु प्रभावी ढंग से वकालत की और दूसरी ओर भारत की मानव अधिकार विहीन जनता को सामाजिक न्याय दिलाने हेतु वैश्विक स्तर पर सर्वप्रथम सही स्थिति का वर्णन किया। बाबासाहेब ने अपने जीवन के सभी रूपों में, जब वह विद्यार्थी रहे, जब वकील रहे, अथवा जब मंत्री रहे सदैव सामाजिक अन्यायों के विरूद्ध दृढ़ विश्वास के साथ लड़ते रहे। महिला-समाज को सामाजिक न्याय दिलाने की सव प्रथम बात बाबासाहेब ने ही हिंदू-कोड-बिल को तैयार करके की, जो कि आज देश में अलग-अलग कानूनों द्वारा लागू किया गया है जिससे सदियों से अधिकार विहीन एवम् अपमानित महिला समाज को समान अधिकारों के रूप में सामाजिक न्याय मिला है।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखित संविधान में निहित मानवतावादी अधिकारों की व्यवस्था ने सामाजिक अन्याय के सिद्धान्तों को जड़ से उखाड़ फेंका। उसके संविधान के मूल तत्व समता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, न्याय, लौकिक-नैतिकता तथा देश की एकता और अखण्डता हैं जिन्हें हम सामाजिक-न्याय के सिद्धान्त कह सकते

हैं। ये सभी बातें आदर्श समाज की स्थापना के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य हैं जो देश की एकता एवं अखण्डता को बनाए रखेगी।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना (प्रिएम्बल) अपनी स्थापना के दिन 26 जनवरी 1950 से ही सभी जातियों, पंथों और समुदायों के लोगों में यह भावना जाग्रत कर रहा है कि यहां के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता, सुलभ एवं सुरक्षित हो, और उन सभी के बीच व्यक्ति की गरिमा और देश की एकता-अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता को बढ़ाया जाए और साथ ही भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाया जाए।

यह नये समाज का द्योतक है, जिसके आधारभूत तत्व न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व है। इन्हीं को प्रभावी बनाने के लिए, भारत का संविधान अपने पूर्ण स्वरूप एवं प्राविधानों सहित एक 'सामाजिक सिद्धांत' है जो अनेक प्रथाओं तथा पंथों का निषेध करता है और साथ ही नये संदर्भ में मानववादी मूल्यों की स्थापना भी करता है।

संविधान में मौलिक अधिकारों का ऐसा प्राविधान है कि यदि किसी नागरिक के अधिकारों का कोई व्यक्ति, संस्था या राज्य उल्लंघन करता है तो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। सभी भारतीय नागरिकों के लिए ये मौलिक अधिकार समान हैं। संविधान नागरिकों को समता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार अन्य ऐसे कई अधिकार देता है। इन अधिकारों में उन मानववादी मूल्यों की प्रधानता है जो सामाजिक न्याय के सार-तत्व को प्रदर्शित करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर की कृतियों में ऐनिहिलेशन ऑफ कास्ट (जातिप्रथा का उन्मूलन) 1936, हू वर द शूद्राज ? (शूद्र कौन थे ?) 1946, द अनटचेबल (अस्पृश्य कौन और कैसे ?) 1948, और बुद्धा एण्ड हिज धम्मा (बुद्ध और उनका धम्म) 1957, विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इन कृतियों में मानव समानता के प्रति डॉ. अम्बेडकर के गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार की झलक मिलती है। उन्होंने विशेष रूप से अस्पृश्य जातियों को अमानवीय जीवन से मुक्त कराने और उन्हें मानवोचित गरिमा प्रदान करने के लिए निरंतर प्रयत्न किया। इसके अलावा उन्होंने समकालीन भारत में लोकतंत्र की समस्या का गहन विश्लेषण रखा और संवैधानिक विधि की वरेण्यता पर भी विस्तृत प्रकाश डाला। सामाजिक न्याय की समस्या निस्संदेह डॉ. अम्बेडकर के चिंतन का सबसे प्रमुख विषय है, और इस लक्ष्य पूर्ति के लिए उन्होंने काफी कड़ी मेहनत की।

डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की धारणा एक ऐसी जीवन पद्धति है जिसके अनुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उचित स्थान मिलना चाहिए। लेकिन उचित स्थान का मतलब यहाँ जन्म आधारित सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं है। इसका सीधा अर्थ वह योग्यता या गुण है जिसके अनुसार किसी को सही-सही सामाजिक प्रतिष्ठा मिले। डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक धारणा के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं- सम्मानपूर्वक रहें और रहने दें, सभी को मान-सम्मान मिले, किसी के प्रति हिंसा न की जाए, स्थाई अथवा तथाकथित स्वाभाविक वर्गों में बांटे बिना प्रत्येक को अपना विवेकपूर्ण हिस्सा मिले, संवैधानिक शासन के प्रति निष्ठापूर्वक रहना, विधि के समक्ष समता, समान अधिकारों की स्वीकृति, संवैधानिक कर्तव्यों का निर्वाह, सामाजिक दायित्वों और विधिक कर्तव्यों की अनुपालना, बेगार तथा भुखमरी से बचाव, कुछ प्राथमिकताओं सहित सभी को समान अवसरों की सुलभता, सम्पत्ति-शिक्षा की उपलब्धता और अन्ततः न्याय, स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व तथा राष्ट्रीय एकता सहित मानव व्यक्तित्व की गरिमा।

डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में, सामाजिक न्याय के सिद्धांत का सीधा सम्बन्ध भारत की अखण्डता से है, अर्थात् इस मातृभूमि में रहने वाले सभी नागरिक भाई-भाई हैं, चाहे वे हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, यहूदी तथा पारसी हों। इस प्रकार बाबासाहेब अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक न्याय का विचार लोगों में मात्र राष्ट्रीय भौतिक लाभों का न्यायोचित वितरण ही नहीं है, अपितु वह मूलतः ऐसी जीवन पद्धति का समर्थक है जो पारस्परिक मान-सम्मान, मैत्री भाव, समान नागरिक होने की उत्कण्ठा, राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्र में न्यायोचित भागीदारी आदि पर आधारित हो। अतः सामाजिक न्याय का मानदण्ड मात्र भौतिक प्रगति नहीं है, मात्र शारीरिक भूख प्यास मिटा देना नहीं है, कुछ सुख-सुविधाएं या सरकारी नौकरियां देना ही नहीं है, बल्कि इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारत के नागरिकों अथवा सभी वर्गों और धर्मों के लोगों के बीच उन मानव मूल्यों तथा आधारों की बहुलता है जिनसे समाज की व्यवस्था न्यायोचित बने और राष्ट्रीय जीवन समता व समरसता की दिशा में अभिवृद्धि हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सामाजिक न्याय के सजग प्रहरी डॉअम्बेडकर निर्देशन डॉ.म.ला.शहारे।
2. न्याय के विविध आयाम. डॉ. के.एच वासनिक।
3. सामाजिक न्याय का सिद्धान्त, डॉ. डी आर जाटव।
4. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर दलित एवं आदिवासी अध्ययन केन्द्र □

(लेखिका महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा में शोधार्थी हैं)

संविधान के कुछ पहलुओं पर एक नज़र

■ डॉ. एस.एल.धनी

भारतीय संविधान के मुख्य निर्माता बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे। संविधान के द्वारा भारतीय समाज से निष्कासित अस्पृश्यों, अदर्शनियों और आज के दलितों को समाज का एक अभिन्न अंग स्वीकार किया गया था और इस समाज के सभी छोटे बड़े प्राणियों को मानवीय अधिकार दिलाए गए, उनको अन्य समूहों के अनुसार ही देश के शासक वर्गों में शामिल किया गया। जिस तिथि को यह क्रान्तिकारी घटना घटित हुई थी वह थी 26 जनवरी 1950।

यह विचारणीय है कि बाबासाहेब को देश की इतनी बड़ी और अभूतपूर्व सेवा करने के बावजूद उन्हें भारत रत्न की सर्वोच्च उपाधि संविधान के लागू होने के 41 वर्ष पश्चात् और उनके परिनिर्वाण के 35 वर्ष पश्चात् दी गई थी। इस उपाधि का उनसे बड़ा अधिकारी निश्चित रूप में कोई अन्य भारतीय नहीं है फिर भी इस वास्तविकता को स्वीकार करने में देश को इतना समय लगा। यह प्रश्न अनुसंधान का विषय है।

भारतीय संविधान बनाने के बारे में पहले एक उद्देश्य प्रस्ताव पारित हुआ था। उस प्रस्ताव के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं–

- भारत एक स्वतंत्र, संप्रभु गणराज्य है।
- भारत ब्रिटेन के अधिकार में आने वाले भारतीय क्षेत्रों, देशी रियासतों और देशी रियासतों के बाहर के ऐसे क्षेत्र जो हमारे संघ का अंग बनना चाहते हैं, का एक संघ होगा।
- संघ की इकाईयां स्वायत्त होंगी और उन सभी शक्तियों का प्रयोग और कार्यों का संपादन करेंगी जो संघीय सरकार को नहीं दी गई।

संविधान सरकार की शक्तियों को नियंत्रित करने वाले नियमों और कानूनों का ही नाम नहीं है। वह सरकार को ऐसी शक्तियाँ भी देता है जिससे वह समाज की सामूहिक भलाई के लिए काम कर सके।

- संप्रभु और स्वतंत्र भारत तथा इसके संविधान की समस्त शक्तियों और सत्ता का स्रोत जनता है।
- भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक न्याय कानून के समक्ष समानता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा कानून और सार्वजनिक नैतिकता की सीमाओं में रहते हुए भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संगठन। और कार्य करने की मौलिक स्वतंत्रता की गारंटी और सुरक्षा दी जायेगी।
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्र, दलित व अन्य पिछड़े वर्गों को समुचित सुरक्षा दी जाएगी।
- गणराज्य की क्षेत्रीय अखण्डता तथा थल, जल, और आकाश में इसके संप्रभु अधिकारों की रक्षा सभ्य राष्ट्रों के कानून और न्याय के अनुसार की जाएगी।
- विश्व शान्ति और मानव कल्याण के विकास के लिए देश स्वेच्छा पूर्वक और पूर्ण योगदान देगा।

संविधान से अपेक्षाएँ

संविधान का पहला काम यह है कि वह बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध कराए जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे। संविधान का दूसरा कार्य इस बात को स्पष्ट करना है कि समाज में फैसला लेने की शक्ति किसके पास होगी। संविधान यह भी निर्धारित करता है कि सरकार किस प्रकार निर्मित होगी। अतः संविधान का तीसरा कार्य यह है कि वह सरकार के माध्यम से अपने नागरिकों पर लागू किये जाने वाले कानूनों की कोई सीमा निर्धारित करे। ये सीमाएँ इस रूप में मौलिक होती हैं कि सरकार भी उन कानूनों का उल्लंघन

नहीं कर सकती। तथा संविधान का चौथा कार्य यह है कि वह सरकार को ऐसी क्षमता दे जिससे वह जनता की इच्छाओं की पूर्ति कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हेतु उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।

संविधान को समर्थ बनाने वाले प्रावधान

संविधान सरकार की शक्तियों को नियंत्रित करने वाले नियमों और कानूनों का ही नाम नहीं है। वह सरकार को ऐसी शक्तियाँ भी देता है जिससे वह समाज की सामूहिक भलाई के लिये काम कर सके।

अंतिम तथा संभवतया सबसे अहम् बात यह है कि संविधान किसी समाज की बुनियादी पहचान होता है। इसका मतलब यह है कि संविधान के द्वारा ही किसी समाज की एक सामूहिक इकाई के रूप में पहचान होती है।

इस सामूहिक पहचान के निर्माण हेतु नागरिकों को इस संबंध में कुछ बुनियादी नियमों पर सहमत होना पड़ता है कि उन पर शासन किस प्रकार होगा और कौन-कौन से लोग शासितों में सम्मिलित होंगे।

संविधान बनने से पहले समाज में दूसरी विभिन्न तरह की पहचान या अस्मिताएँ होती हैं। परन्तु कुछ बुनियादी नियमों और सिद्धांतों पर सहमत होकर संविधान निर्माता अपनी मूलभूत राजनीतिक पहचान बनाते हैं।

दूसरे संवैधानिक नियम समाज को एक ऐसा विशाल ढाँचा देता है जिसके अंतर्गत् समाज अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, लक्ष्यों और स्वतंत्रताओं का प्रयोग करते हैं। संविधान आधिकारिक बंधन लगा कर यह तय कर देता है कि कोई क्या कर सकता है और क्या नहीं। अत: संविधान हमें एक नैतिक पहचान भी देता है।

तीसरी तथा आखिरी बात यह है कि अब शायद यह सम्भव हो सका है कि विभिन्न बुनियादी राजनीतिक और नैतिक नियम विश्व के सभी तरह के संविधानों में स्वीकृत किये गये हैं।

संविधान की भूमिका

संविधान की भूमिका में कहा गया है कि भारत के लोगों का यह प्रस्ताव है कि भारत के सभी नागरिकों व भारत को संप्रभुता वाले सामाजिक, धर्म निरपेक्ष तथा प्रजातान्त्रिक गणतंत्र बनाते हैं और वे सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, मान्यता और उपसना आदि के मामले में उदारता, भाईचारा सम्बन्धी अधिकार और हर एक व्यक्ति के लिये गर्व और देश में एकता भी सुनिश्चित करते हैं।

भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया था और 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया।

जीवन्त दस्तावेज

यह संविधान एक जीवन्त दस्तावेज है। इसकी निम्न केन्द्रीय विशेषताएं इसे जीवन्त बनाती हैं:

- कानूनी प्रावधान और सांस्थानिक-व्यवस्था समाज की आवश्यकता तथा समाज द्वारा अपनाये गए दर्शन पर आधारित हैं।
- संविधान को समय की जरूरतों के अनुसार संशोधित किया जा सकता है। इसमें बहुत संशोधन किये जा चुके हैं परन्तु इसका मूल रूप अब भी विद्यमान है।
- इसकी रक्षा एवं व्याख्या में न्यायपालिका की अहम भूमिका रही है।
- इसमें बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है, लेकिन इसकी मूल भावना के साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं की जा सकती।

वर्तमान संविधान के अन्तर्गत सरकार की शक्तियों की ये सीमायें निर्धारित हैं:

(I) सरकार किसी भी नागरिक को किसी धर्म का पालन करने या न करने की आज्ञा नहीं दे सकती।

(II) सरकार का यह कर्तव्य है कि वह आय और संपत्ति की असमानता को कम करने का प्रयास करे।

(III) राष्ट्रपति के पास प्रधानमंत्री को नियुक्त करने की शक्ति है।

(IV) संविधान वह सर्वोच्च कानून है जिसका सभी को पालन करना

पड़ता है।

संविधान से लाभ

- समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे।
- समाज में फैसला लेने की शक्ति किसके पास होगी।
- जनता की इच्छाओं की पूर्ति कर सके।
- न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके।
- समाज की सामूहिक भलाई के लिए काम कर सके।
- संविधान किसी समाज की बुनियादी पहचान होता है।
- संविधान बनने से पहले समाज में दूसरे विभिन्न तरह की पहचान या अस्मिताएँ होती हैं।
- बुनियादी राजनीतिक और नैतिक नियम

ऐसा नहीं है कि इस या उस दिशा में कुछ भी नही ं किया जा सका है परन्तु प्रश्न यह है कि जो कुछ किया जा चुका है उससे वास्तविक लाभ किसका हुआ है। अगर आप अपने आस-पास झांकें तो यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं होगा कि यदि पिछड़े वर्गों को 100 रुपयों का लाभ हुआ है तो अगड़े वर्गों को 10,000 रुपयों का लाभ हुआ है। इसके उदाहरण स्वरूप प्राकृतिक आपदाओं को ही लें। पिछड़े वर्गों को तो अनुदान इनकी मजदूरी के अनुपात में मिलता है परन्तु अगड़ों को उनकी साधारण आय के साधनों को ध्यान में रख कर हजारों गुणा राशि स्वीकृत की जाती है। क्या इससे इन्कार किया जा सकता है कि इसके पीछे नीति निर्माताओं का यह प्रयास रहता है कि इनके किसी भी कदम से परम्परागत असमानता में रत्ती भर भी अन्तर नहीं पड़ना चाहिए।

मैंने अपनी पुस्तक ''इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल; न्यू इन्साईट एण्ड डॉ. बी आर. अम्बेडकर मेन ऑफ मिलेनियम फॉर सोशल जस्टिस

कट्टरवादी सामंतियों ने उस समय संविधान में संशोधन करके अमरीका के समान राष्ट्रपति शासन प्रणाली अपनाने के जोरदार प्रयास किये थे। मेरे विचार में उस प्रयास का मुख्य आशय यह था कि इसके बाद संविधान से आरक्षण सम्बन्धी प्राविधानों को हटाना आसान हो जायेगा।

इसी प्रकार जब दलितों में से एक राष्ट्रपति बने तो कट्टरवादी मनुवादियों ने एक नई बहस यह छेड़ दी कि संविधान फेल हो गया है इसलिये इसको बदल दिया जाये। इस पर तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति जी को यह पूछना पड़ा था कि संविधान फेल हो गया या इसको हमने फेल किया है ?

खैर! भारतीय संविधान अच्छा है या बुरा है, इसका उत्तर तो सोचने वाले पर निर्भर करता है लेकिन शायद यह कहना युक्तियुक्त होगा कि स्वार्थी, दमनकारी और शोषक वर्ण व्यवस्था के समर्थक अन्धभक्तों के लिये तो यह एक हाथी के समान भिन्न-भिन्न अर्थ ही रखता रहेगा। फिर भी इसका वर्तमान रूप में होना भी हम दलितों के लिये अच्छा ही है।

लेकिन चूंकि इसमें अन्यायपूर्ण पूना पैक्ट का समावेश है। इसलिए मनुवादी मानसिकता वाले हुक्मरान हमारी तरक्की और विकास में सदा बाधा पहुँचाते रहेंगे। इसलिए दलित विरोधी रूप से छुटकारा पाने के लिए हम लोगों को एक और साइलेंट रिवोल्युशन लानी होगी। तभी यह सम्भव होगा कि हमारे प्रतिनिधि विधायिकाओं में गूंगे और बहरे बनकर नहीं बैठ सकेंगे।

कहा जाता है कि हलवे का स्वाद खाने पर निर्भर है। अब तक का देश का तजुर्बा यही बताता है कि यह संविधान अनेक अर्थों में फेल ही रहा है जिनमें ये बातें अधिक महत्वपूर्ण हैं :

- यह मनुस्मृति के कुप्रभाव को नहीं रोक पाया है जिसके कारण मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों के प्रचार की खुली छूट है।
- यह राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवारवाद को नहीं रोक पाया है।
- यह आय और सम्पत्ति के अन्यायपूर्ण वितरण को कम करने की बजाय उसकी खाई को और भी चौड़ा होने से नहीं बचा पाया है।

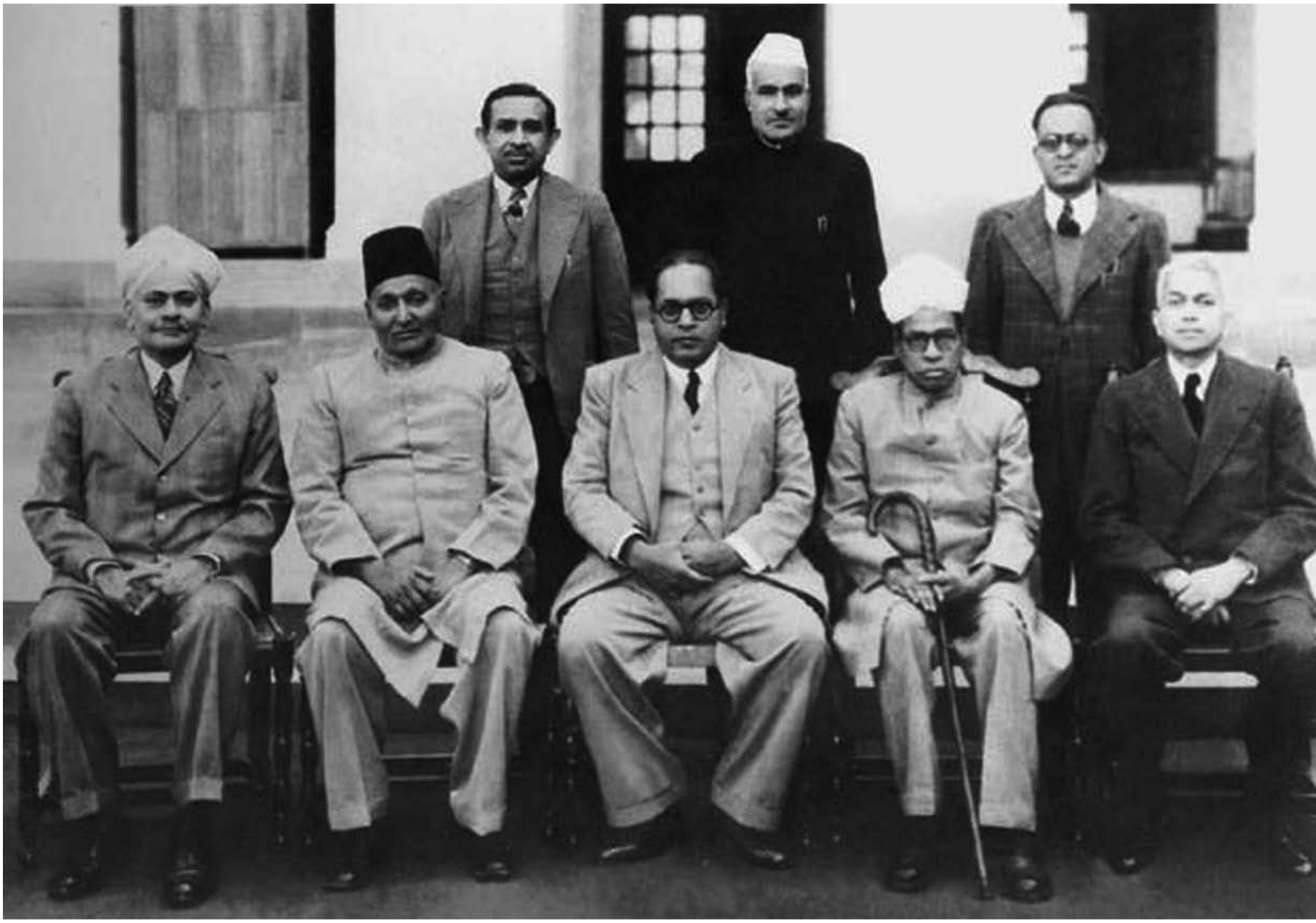

- यह दलितों में भी घटिया परिवारवाद लाकर राजनीतिक लाभ राज्यों और केन्द्र में कुछ सौ परिवारों तक ही सीमित रखता रहा है जिनको पहले के समान द्विजों के दासों के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।
- यह दलित प्रतिनिधियों को भी किसी भी पटल पर पिछड़े समुदायों से सम्बन्धित मुद्दों को उठाने में रोकता रहा है।
- यह आरक्षण सम्बन्धी प्रावधानों का दुरुपयोग करवा कर विशेष जातियों को सारा लाभ देने से राजनीतिक दबंगों को और भी भयानक बनने से नहीं रोक पा रहा है।
- यह अन्धविश्वास और परम्परा के नंगे नाच को रोकने से बचता रहा है जिसकी वजह से आये दिन देश भर में दलितों और महिलाओं का भीषण उत्पीड़न होता रहता है।

ध्यान देने योग्य है कि इस संविधान को स्वयं बाबासाहेब ठीक नहीं समझते थे क्योंकि उन्होंने कह दिया था कि यदि उनका वश चले तो वे इस संविधान को आग लगा दें। इस बहस से यह भी सवाल पैदा होता है कि उसके बारे में हम इतने अधिक उत्साहित कैसे हो सकते हैं ? चूंकि संविधान की अनुपयोगिता के बारे में बहस सभी राजनीतिक पार्टियों के सामंती प्रवृत्ति के मनुवादी नेताओं ने आरम्भ की थी। यह तो स्पष्ट रूप में माना जा सकता है कि वे तो संविधान के वर्तमान रूप से संतुष्ट नहीं हैं। अति पिछड़े वर्ग किस सीमा तक संतुष्ट हो सकते हैं यह विचारणीय है। अब यदि संविधान को बदल देने का सवाल पैदा हो ही जाये तो इसको बचाने वाला कौन रहेगा? यदि आप कुछ आशा पिछड़े वर्गों से आने वाले विधायिकाओं में मौजूद प्रतिनिधियों से लगायें तो वे तो निश्चित रूप में अपने-अपने आकाओं के आदेशों का पालन करने को मजबूर होंगे। ये नुक्ते इतने गम्भीर हैं कि इनसे सम्बन्धित बात कहने में कई बार जबान लड़खड़ा जाती है और लेखनी थर्रा उठती है। अफसोस की बात यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों और सत्ता के गलियारों में इनके बारे में कानाफूसी करने की भी कोई हिम्मत नहीं कर सकता। □

(लेखक रिटायर्ड आई.ए.एस. हैं)

डॉ. अम्बेडकर की आरक्षण की अवधारणा

■ डॉ. देवानंद कुंभारे

बाबासाहेब डॉ. बी.आर.अम्बेडकर के सामाजिक संघर्षों की विधिवत शुरुआत 27 जनवरी 1919 को 'साउथबरो समिति' के समक्ष साक्ष्य और प्रतिवेदन प्रस्तुत कर हुई। उसमें उन्होंने दलितों के हकों की कैफियत ब्रिटिश सरकार के सामने रखी। उसके बाद उन्होंने सन् 1927 में, मुंबई विधान मण्डल का सदस्य रहते हुए आरक्षण के समर्थन में जोरदार भूमिका अदा की। सन् 1928 में साइमन कमीशन के सामने साक्ष्य और निवेदन प्रस्तुत किया जिसमें दलित-आदिवासियों के लिए विविध मांगों का ज्ञापन प्रस्तुत किया। 1930-31 में, गोलमेज सम्मेलनों के माध्यम से आरक्षण नीति को बनाने और पूरे भारत में लागू करवाने के सन्दर्भ में फिर जोरदार वकालत की, जिसकी अंतिम परिणति पूना पैक्ट में हुई। पूना पैक्ट से दलित-आदिवासियों को राजनीति में आरक्षण मिला। उधर सन् 1942 में जब डॉ. अम्बेडकर भारत सरकार के वायसराय मंत्रिमंडल में मंत्री थे तब ब्रिटिशों से दलित और आदिवासियों के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था करवाई। डॉ. अम्बेडकर की इस पहल से भारतीय नौकरशाही के इतिहास में प्रथमत: दलित-आदिवासियों के लिए नौकरियों में आरक्षण प्राप्त हुआ। इससे डॉ. बी.आर. अम्बेडकर भारत के इतिहास के ऐसे हस्ताक्षर बने जिनके अथक प्रयास और संघर्षों की वजह से राजनीति, शिक्षा और नौकरी के क्षेत्रों में दलित-आदिवासियों के लिए आरक्षण हासिल हो सका। संविधान बनाते समय भी यही लक्ष्य कायम रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने भारत के समस्त शोषित-पीड़ितों को जिसमें अनुसूचित

जातियां/अनुसूचित जनजातियां और अन्य पिछड़े वर्ग आते हैं, को आरक्षण देने के लिए अनेक अनुच्छेदों को संविधान में शामिल किया। संविधान लागू होने के उपरांत विकलांगों के लिए भी आरक्षण लागू किया गया। सदियों से शोषित रही भारत की समस्त महिलाओं के जीवन में क्रांति लाने के लिए भी 'हिंदू कोड बिल' के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर अविरत संघर्ष करते रहे हैं। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण और हिंदू कोड बिल के पास न होने से उन्होंने केन्द्रीय कानून मंत्री का पद त्याग दिया। शिक्षा, राजनीति और नौकरियों में प्रतिनिधित्व के लिए डॉ. अम्बेडकर का संघर्ष और उस संघर्ष को वैधता प्रदान करने के लिए स्वयं की आरक्षण नीति का दर्शन पैदा किया जो बहुत ही विस्तृत है। प्रस्तुत आलेख की उद्देश्य पूर्ति हेतु डॉ. अम्बेडकर की आरक्षण की अवधारणा और आरक्षण प्राप्ति हेतु उनके संघर्षों के कुछ प्रसंगों को यहाँ पर उद्धृत करने का प्रयास किया गया है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का 'समतावाद' यह सत्य है कि जीवन के हर क्षेत्र में 'आरक्षण' व्यवस्था द्वारा पूरी तरह 'समता' स्थापित नहीं की जा सकती। लेकिन 'समता' की ओर बढ़ने का 'आरक्षण' एक सशक्त माध्यम है, ऐसा देश-विदेशों की सामाजिक न्याय की नीतियों के अवलोकन करने पर पता चलता है। हालांकि हर विचार, अवधारणा, दर्शन और संघर्षों के दो पहलू होते हैं। सकारात्मक और नकारात्मक, सामाजिक न्याय की नीति 'आरक्षण' के लिए भी यह तथ्य लागू है, फिर भी आम लोगों के कल्याण के लिए

ऐसी किसी भी नीति या संघर्ष के सकारात्मक पहलुओं की तरफ देखकर साहस के साथ कदम रखना पड़ता है। भारतीय आरक्षण नीति का इतिहास भी इससे परे नहीं है। भारतीय आरक्षण नीति के नायक के तौर पर डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के कुछ अवधारणात्मक और कुछ संघर्षात्मक पक्षों को यहां पर उजागर करने

का प्रयास किया गया है, उसमें से कुछ बिंदु निम्न हैं-:

जैसा कि ऊपर कहा गया है, 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष दलितों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व, जिसे आधुनिक भाषा में आरक्षण कहा जाता है, के समर्थन में डॉ. अम्बेडकर ने साक्ष्य दिये थे, उस पर स्पृश्य और अस्पृश्यों ने अलग-अलग आक्षेप किए थे। डॉ. अम्बेडकर ने उन आक्षेपों का समाधान अपनी बुद्धि-कौशल से अकाट्य तर्क देकर समय-समय पर किया। स्पृश्यों के कुछ आक्षेपों में से एक जो पूना के 'चित्रमय जगत' के सम्पादक की तरफ से लिया गया था वह है:

"डॉ. अम्बेडकर के 'समाज समता संघ' का अध्यक्ष होने के बावजूद भी उनके द्वारा अस्पृश्य समाज के लिए जाति आधारित प्रतिनिधित्व (आरक्षण) की मांग कैसे की गई? किसी एक समाज के लिए जाति आधारित प्रतिनिधित्व की मांग करना क्या एक तरह की विषमता नहीं है ?" इस तरह के आक्षेप लेते हुए आज भी कई महानुभावों को देखा जा सकता है जो अज्ञानतावश या द्वेष की वजह से करते रहते हैं।

इसके उत्तर में डॉ. अम्बेडकर ने 1/12/1929 को अपने पाक्षिक **'बहिष्कृत भारत'** के अग्रलेख में लिखा-

"इन आलोचकों को समतावादियों का लक्ष्य क्या है इसकी बिल्कुल ही समझ नहीं है। यदि उन्हें इसकी समझ होती तो वे ऐसा आक्षेप लगाने की जहमत न उठाते। शायद उन्हें ऐसा लगता होगा कि सभी के साथ समानता का व्यवहार करना समतावादियों का लक्ष्य है, पर यही उनकी गलती है ऐसा हम बतलाना चाहते हैं। समतावादियों का लक्ष्य सभी से 'समता का व्यवहार' करना न होकर 'समता प्रस्थापित करना' है।" डॉ. अम्बेडकर ने यहां पर अति संक्षिप्त में स्पष्ट कर दिया है कि असल में उनकी 'समता की अवधारणा' अर्थात् उनका 'समतावाद' क्या है, उनके 'समतावाद का लक्ष्य' क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। भारत के विविधतामय, विषमतामय और जातीय सामाजिक पर्यावरण में किस तरह 'समता' हासिल की जा सकती है। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि से उसके तरीके क्या हो सकते हैं यह जानना भी बड़ा दिलचस्प रहेगा। इस पर वे स्वयं कहते हैं-

"समता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सभी से समानता का बर्ताव करना संभव नहीं है। जहां पर सभी व्यक्ति समान हैं वहां कुछ व्यक्तियों के साथ असमानता का बर्ताव करने से विषमता पैदा होगी। लेकिन जहां व्यक्ति असमान हैं वहां उनको समान मानकर चलने का अर्थ समता प्रस्थापित करने के लक्ष्य का विरोध करना है। इस संदर्भ में रोगी व्यक्ति का उदाहरण रखना ठीक रहेगा। स्वस्थ मनुष्य को भारी भोजन देना ठीक है। लेकिन कोई पागल 'समतावादी' मनुष्य यदि यही भोजन रोगी व्यक्ति को देगा तो वो उसका प्राण दाता होने के बजाय प्राणहर्ता हो जाएगा। उसी तरह अमीरों पर जितना कर लगाया जाता है, उतना ही गरीबों पर भी लगाया जाता है तो असमानता

"समता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सभी से समानता का बर्ताव करना संभव नहीं है। जहां पर सभी व्यक्ति समान हैं वहां कुछ व्यक्तियों के साथ असमानता का बर्ताव करने से विषमता पैदा होगी। लेकिन जहां व्यक्ति असमान हैं वहां उनको समान मानकर चलने का अर्थ समता प्रस्थापित करने के लक्ष्य का विरोध करना है। इस संदर्भ में रोगी व्यक्ति का उदाहरण रखना ठीक रहेगा। स्वस्थ्य मनुष्य को भारी भोजन देना ठीक है। लेकिन कोई पागल 'समतावादी' मनुष्य यदि यही भोजन रोगी व्यक्ति को देगा तो वो उसका प्राणदाता होने के बजाय प्राणहर्ता हो जाएगा। उसी तरह अमीरों पर जितना कर लगाया जाता है, उतना ही गरीबों पर भी लगाया जाता है तो असमानता पैदा हो जाएगी, समान कर देने की क्षमता रखने वाले अमीरों पर यदि कम कर लगाया जाए या स्वस्थ मनुष्य को जिसमें भोजन को हजम करने की क्षमता है उसे रोगी का भोजन दे दिया जाए तो भी विषमता होगी। इस उदाहरण के जरिए यह समझा जा सकता है कि समान व्यक्तियों से असमानता का और असमान व्यक्तियों से समानता का व्यवहार न करना यही समतावादियों का दस्तूर है।"

पैदा हो जाएगी, समान कर देने की क्षमता रखने वाले अमीरों पर यदि कम कर लगाया जाए या स्वस्थ्य मनुष्य को जिसमें भोजन को हजम करने की क्षमता है उसे रोगी का भोजन दे दिया जाए तो भी विषमता होगी। इस उदाहरण के जरिए यह समझा जा सकता है कि, समान व्यक्तियों से असमानता का और असमान व्यक्तियों से समानता का व्यवहार न करना यही समतावादियों का दस्तूर है। डॉ. अम्बेडकर का यही कहना है कि समान (परिस्थिति वाले) व्यक्तियों से समानता का और असमान (परिस्थिति वाले) व्यक्तियों से असमानता का व्यवहार करने से ही समता स्थापित की जा सकती है। समान व्यक्तियों से यहां पर तात्पर्य है कि जिनकी शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक आदि स्थितियां एक जैसी या एक ही हों, इसके विपरीत असमान व्यक्तियों से तात्पर्य है कि जिनकी शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक आदि स्थितियां एक जैसी या एक ना हो अर्थात् एक-दूसरों से भिन्न-भिन्न हों। इसलिए उनका कहना कि,'जहां पर सभी व्यक्ति समान हैं वहां कुछ व्यक्तियों के साथ असमानता का बर्ताव (व्यवहार) करने से विषमता पैदा होगी' एकदम सही प्रतीत होता है। यही डॉ. अम्बेडकर का 'समतावाद' है और यही उनके 'आरक्षण का दर्शन' है।'' इस दृष्टि से देखा जाए तो डॉ. अम्बेडकर की आरक्षण की मांग उनके 'समतावाद' के दर्शन से पूरी तरह मेल खाती है यह समझना आसान हो जाता है। अस्पृश्य और स्पृश्य ये दोनों वर्ग अगर समान होते और डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्यों के लिए जातिवार प्रतिनिधित्व की मांग की होती, तब उनके 'समतावाद' पर आरोप लगाना ठीक रहता। तब ऐसा कहा जा सकता था कि एक ही (समान) दरजे के लोगों में डॉ. अम्बेडकर भेदभाव फैलाना चाहते हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि स्पृश्य और अस्पृश्य इन दो वर्गों में किसी भी प्रकार की समानता नहीं है। शिक्षा, सम्पत्ति और आबादी इन तीनों आधारों पर इन दोनों वर्गों में जमीन-आसमान का अंतर है। शिक्षा के बारे में स्पृश्य उन्नत और अस्पृश्य पिछड़े, संपत्ति के बारे में स्पृश्य अमीर और अस्पृश्य गरीब, जनसंख्या के बारे में स्पृश्य बलवान और अस्पृश्य दुर्बल, यह तो वास्तविक स्थिति आज की भी है। अर्थात अस्पृश्य समाज का पलड़ा स्पृश्य समाज के पलड़े से कई आधारों पर हल्का है। ऐसे असमान वर्गों के बीच समानता का व्यवहार करने से उनके परस्पर आचरण व्यवहार में किसी तरह का बदलाव होने की आशा नहीं की जा सकती, यह स्पष्ट है। और यह भी उतना ही सत्य है कि असमान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ असमान व्यवहार करने से 'समानता' स्थापित हो सकती है, जैसा कि हम देख रहे हैं संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों के अनुसार सरकार कमजोरों का सामाजिक स्तर ऊपर उठाने के लिए विशेष योजनाएं चलाकर ज्यादा मदद करती है, वह केवल उनकी स्थितियों में सुधार लाने के लिए अर्थात् सक्षम लोगों के समकक्ष लाने के लिए है, जिनके अच्छे परिणामों का मीठा फल कुछ हद तक भारतीय समाज चख रहा है जिसे आज कोई झुठला नहीं सकता।

प्रतिनिधित्व/आरक्षण का आधार 'जाति' क्यों ?

'जाति' भारतीय संविधान में दलित, आदिवासी और पिछड़ी, जातियों के लिए आरक्षण देने का 'आधार' बनाई गई है। चूंकि भारत को विश्व में 'जातियों का देश' के रूप में जाना जाता है और वर्तमान में यहां छह हजार से भी ज्यादा जातियां विद्यमान हैं। अनुच्छेद 14 (4) पर संविधान सभा में बहस करते हुए पिछड़ेपन को तय करने में 'जाति' एक मापदण्ड कैसे बन सकती है यह समझाने के लिए संविधान के शिल्पकार और स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कहा था- कि सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को तय करने के लिए जाति 'कैसे' और 'क्यों' आरक्षण का आधार बनी?

अपने पूर्व के सामाजिक अधिकारों के संघर्षों में डॉ. अम्बेडकर ने प्रतिनिधित्व अर्थात् आरक्षण की जो मांग की थी वह जाति के आधार पर थी। इस पर कुछ लोगों ने आपत्ति जताते हुए कहा था कि डॉ. अम्बेडकर यदि 'समतावादी' हैं तब यह जाति आधारित मांग समता के तत्व को भंग करती है, क्योंकि यह जातिवाद बढ़ाती है। उसी तरह अस्पृश्य समाज को हिंदू समाज से भिन्न समझने की जो मांग डॉ. अम्बेडकर ने की थी उसका भी कड़ा विरोध विरोधियों ने किया। उस पर अम्बेडकर ने करारा जवाब दिया-

''हमें हिंदू समाज से समानता का नाता जोड़ना है, वह हिंदू समाज में रहकर उसका गुलाम बनकर नहीं। हमें हिंदू समाज में सभी क्षेत्रों में समानाधिकारी बनना है। यही डॉ. अम्बेडकर की योजना का लक्ष्य है, और उस योजना की मात्र ऊपरी तौर पर दिखने वाली विषमता पर तुम्हारी नजर होगी तब यह विषमता समता के लिए ही है ऐसा हमारा मानना है।''

राजनीतिक आरक्षण क्यों ?

1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने हाथ में सत्ता सूत्र लेने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत में नए-नए कानून बनाकर अपना राज चलाया। 1930 के आस-पास और उसके बाद देश को चलाने के लिए नया संविधान बनाने की प्रक्रिया तेजी पकड़ रही थी। इस नए संविधान में दलित-शोषितों-दुर्बल समाज के घटकों के क्या अधिकार होने चाहिए, इस पर डॉ. अम्बेडकर ने एक घोषणा-पत्र तैयार किया, जो 'दलित हकों का घोषणा-पत्र' नाम से विख्यात है। यह घोषणा-पत्र 8 अगस्त 1930 को नागपुर में आयोजित 'अखिल भारतीय दलित वर्ग परिषद' में डॉअम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किया गया।

इस घोषणा-पत्र के प्रारूप में दुर्बल समाज घटकों को राजनीति और नौकरी के क्षेत्र में आरक्षण की रुपरेखा थी। राजनीतिक आरक्षण की मांग रखते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं, ''हिंदू धर्म के अनुसार भारत में

जाति-व्यवस्था की संरचना चढ़ते क्रम में सम्मानजनक और उतरते क्रम में तिरस्कारपूर्ण है। निचले दर्जे की जातियों के लोगों के मन में ऊँचे दर्जे की जातियों के उम्मीदवारों को चुनने हेतु पसंदगी की भावना पैदा होती है, इसके ठीक उलट निचली जाति के उम्मीदवारों के सन्दर्भ में ऊंची जाति वालों के मन में तिरस्कार की भावना पैदा होती है। इस मानसिक स्थिति का दलित वर्गों के शासन सत्ता में भागीदारी के लिए चल रहे प्रयासों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस वजह से अस्पृश्य उम्मीदवार के लिए एक भी वोट न डालते हुए स्पृश्य लोग अस्पृश्यों के अधिकतर वोट पा सकेंगे, और इसका परिणाम यह होगा कि अस्पृश्य लोग चुनाव में केवल हार जाएंगे........।'' और सिर्फ ऊँची जातियां ही इस देश की सत्ता पर कब्जा कर लेंगी, ऐसा डॉ. अम्बेडकर का मत था। वे आगे कहते हैं, ''धन-संपन्न, उच्च शिक्षित व उच्च वर्णियों की शासन सत्ता में तानाशाही स्थापित होगी। तानाशाह इस आरोप से मुक्त नहीं रह सकते हैं कि इतर वर्गों के लिए उनके मन में पक्षपात की भावना है। उनमें खुलेआम दिखाई देने वाला वंशाभिमान है, अपने जात भाईयों का पक्ष लेने की प्रवृत्ति है और इसलिए उनके हाथ में शासन सत्ता नहीं जानी चाहिए। .....आधुनिक लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में मूलभूत तत्व हैं, हर एक व्यक्ति का मूल्य मान्य करना, और हर व्यक्ति को केवल एक ही बार जीवन जीने का अवसर मिलने की वजह से उसे उसके सुप्त गुणों के विकास के लिए पूरा-पूरा अवसर मिलना चाहिए। परंतु भारत के तानाशाहों को इसमें से कोई तत्व मान्य है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। उनका कुछ ऐसा मत है कि वर्तमान जीवन यह अनेक जीवनों की श्रृंखलाओं में से एक होकर जीवन में उनकी स्थिति उनके पूर्व जन्म के पाप-पुण्य की वजह से तय होती है। इसलिए किसी का शील कितना भी ऊँचा क्यों न रहे या

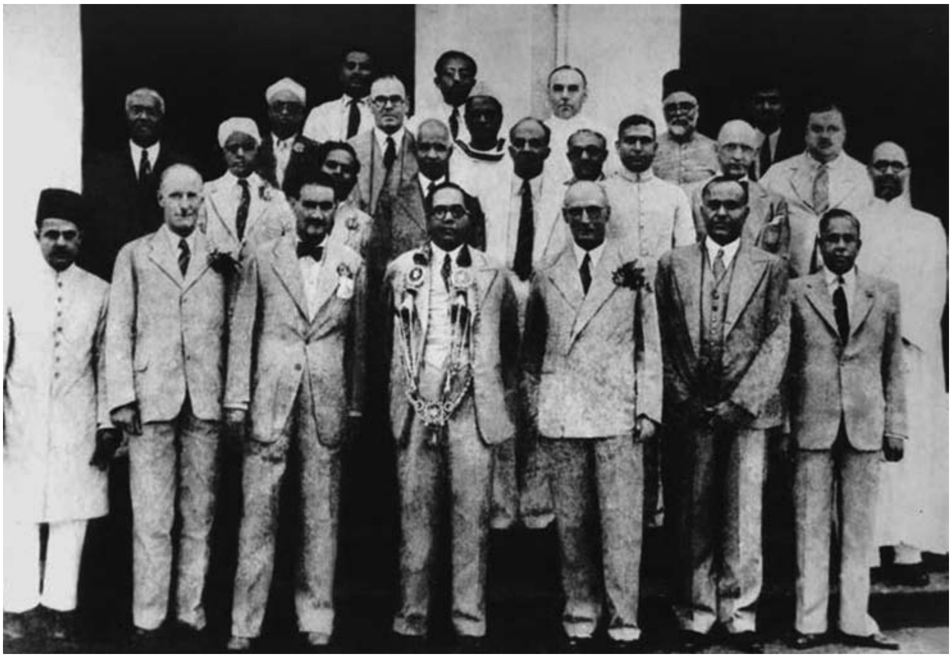

उसमें कितनी भी महान् योग्यता क्यों न पायी हो, फिर भी जन्म की वजह से प्राप्त उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इस तानाशाही का तत्व है कि एक बार कोई ब्राह्मण के रूप में जन्मा तो वह ब्राह्मण के अलावा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता और कोई परिया करके जन्मा तो कुछ भी हो जाए वह परिया ही रहेगा।..... ....यह वर्तमान में अस्तित्व में रहने वाला धर्म मत है। इस तरह के लोगों के हाथ में अनिर्बन्ध सत्ता देने का मतलब ही फांसी देने वाले के हाथ में छुरी देने जैसा है।''

उपरोक्त पैरा में डॉ. अम्बेडकर इस तथ्य को कथन कर रहे हैं, कि भारत देश के सभी संसाधनों-शिक्षा, संपत्ति, नौकरी, राजनीति आदि पर पहले से ही उन्नत ऊंची जातियों का एकाधिकार रहा है, और इसके बाद भी यदि हालात यही रहे तो फिर शोषित-पीड़ित गर्त में चले जाएंगे। ऊँची जातियां, जिनका सारे संसाधनों पर कब्जा रहेगा, वह जातियां कभी नहीं चाहेंगी कि उनका कोई प्रतिस्पर्धी तैयार हो जाए, और उन्हें उनके सदियों के बने हुए वर्चस्व से बेदखल करें। चूंकि सभी दृष्टि से संपन्न वर्गों की यही मानसिकता रही है कि उनके अलावा इतर समूह गरीब ही रहें, दरिद्रता के जीवन में ही रहें। संपन्न वर्गों, जातियों के प्रति उनकी इस नैराश्यवादी भूमिका की वजह से ही अमीर-गरीब की इतनी खाई बढ़ गई है। इस खाई को पाटने के लिए ही लोकतांत्रिक देशों में सकारात्मक कार्यवाही (अफर्मेटिव एक्शन) या आरक्षण जैसे संरक्षणात्मक उपायों की मांग लगातार होती रही है।

मुठ्ठी भर उच्च वर्ग की जातियों की उन्नति और सम्पन्नता

डॉ. अम्बेडकर की प्रतिनिधित्व की मांग ही सदियों से वंचित तबकों के लिए संरक्षणात्मक उपाय मांगने की ही प्रक्रिया थी। क्योंकि भारत की ऊंची जातियां और सम्पन्न वर्गों ने सदियों से ही निचली मानी जाने वाली जातियों का जीवन के हर स्तर पर, यथा-सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक सांस्कृतिक, आर्थिक आदि में शोषण ही किया है। इस तरह सदियों से होने वाले शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वालों को कई तरीकों द्वारा खामोश करवाया गया। परिणाम यह हुआ कि भारत की कुछ जातियां जंगलों-पहाड़ों में, कुछ जातियां घुमक्कड़ी करते हुए और कुछ जातियां गाँव की सीमा के बाहर बहिष्कृत जीवन जीने

के लिए मजबूर करवा दी गईं, यही भारत देश का असली सामाजिक इतिहास है। ऐसा करने के पीछे शोषणकर्ताओं के उद्देश्य कुछ भी क्यों न रहे हों, इसमें से घोर दरिद्रता का जन्म हुआ, परिणामत: भारत की सर्वाधिक जातियों का सामाजिक-आर्थिक पतन हुआ और इस पतन के आधार पर कुछ मुठ्ठी भर जातियों ने अपनी उन्नति और संपन्नता के महल खड़े किए। चूंकि भारत देश में पतित और वंचित जाति समूह ही अधिक थे और हैं। जब तक इनकी जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति नहीं होती, भारत देश कभी सुखी-संपन्न नहीं हो सकेगा। यह स्थिति पैदा करने के लिए शोषितों को विशेष सुविधाएं प्रदान करने की जरुरत होती है। इन सुविधाओं को बनाने और उन्हें क्रियान्वित करवाने का कार्य विधि मण्डल करते हैं। अत: उपेक्षितों को न्याय या सामाजिक न्याय विधि मण्डलों द्वारा अंतिमत: प्रदान किया जाता है। उपेक्षित लोग या उनके प्रतिनिधि जब तक विधि मंडलों में नहीं रहेंगे, अपने वर्ग के साथ न्याय नहीं करवा सकेंगे। ऐसा न्याय करवाने के लिए ही अंग्रेजों से विधिमंडलों अर्थात् राजनीति में प्रतिनिधित्व अर्थात् आरक्षण का अधिकार मांगने का कार्य डॉ. अम्बेडकर ने अपने अकाट्य तर्कों से किया, जिसमें वे अंतिमत: सफल रहे।

नौकरियों में आरक्षण क्यों?

राजनीति में शोषितों को आरक्षण क्यों होना चाहिए, इसका तर्कपूर्ण युक्तिवाद करने के बाद डॉ. अम्बेडकर नौकरियों में आरक्षण का अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। उसके लिए वे विधायिका में कानून बनाने के अधिकार और कार्यपालिका द्वारा कानून-नियमों का क्रियान्वयन कराने के अधिकार की तुलना करते हुए कहते हैं-

''कानून बनाने के अधिकार की अपेक्षा कानून का अमल (क्रियान्वयन) करने का अधिकार कम महत्व का नहीं है, और अमल करने वाली यंत्रणा के द्वारा कानून बनाने वालों के अवसान पूरी तरह नष्ट यदि नहीं भी किए जा सके तो भी उसे नियंत्रित अवश्य किया जा सकता है। शासन की कार्यकारी यंत्रणा पर दलित वर्ग ने कब्जा करने के लिए उत्सुकता दिखानी चाहिए, इसका केवल यही कारण नहीं है। कार्य की व्यस्तता की वजह से या परिस्थिति की अड़चन की वजह से अक्सर अमल करने वाले अधिकारी के हाथ में स्थितियों को भांपते हुए निर्णय देने का अधिकार होता है। इस प्रसंगोचित निर्णय देने के अधिकार का अमल निष्पक्षता से होता है या नहीं, इस पर ही जनता का कल्याण निर्भर है। अमल के अधिकार जहां केवल एक ही जाति के हाथ में हैं ऐसे भारत सरीके देश में इस प्रासंगिक न्याय देने के अधिकार का दुरुपयोग एक वर्ग का फाजिल विकास साधने में ही होने की बड़ी आशंका है। इसके लिए सही इलाज यानि दलित वर्ग के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षित पद रखने की मांग हमने करनी चाहिए। .....दलित वर्ग हमेशा ही अल्पसंख्यक रहने वाला है ......इससे यह स्पष्ट होता है कि इस तरह की गारंटी मांगना क्यों आवश्यक है।''

डॉ. अम्बेडकर के उपरोक्त चिंतन का निम्न निचोड़ होना चाहिए-

1. कानून को अमल करने का अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है।
2. कानून बनाने वालों को नियंत्रित किया जा सकता है।
3. अमल करने वाले अधिकारी परिस्थितिजन्य निर्णय दे सकते हैं।
4. अमल के अधिकार केवल एक ही जाति के हाथ में होने की वजह से भारत सरीके देश में प्रासंगिक न्याय देने के अधिकार का दुरुपयोग एक वर्ग का अत्याधिक विकास साधने में ही हो सकता है।
5. दलित वर्ग हमेशा ही अल्पसंख्यक रहने वाला है, इसलिए भविष्य में उनकी पीढ़ियों के संरक्षण हेतु सही इलाज सरकारी नौकरियों में पदों का आरक्षण है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि दलितों को नौकरियों में आरक्षण मांगने के पीछे डॉ. अम्बेडकर का उद्देश्य था-

(I) दलित नौकरियों में जाकर अपने समुदाय के हित में बने कानूनों-नियमों को अच्छी तरह से क्रियान्वित कर देश के अन्य समूहों के साथ अपने समुदाय के भी हित-रक्षण में योगदान करें,

(II) विधायिकाओं को कुछ हद तक जुल्मी कानून बनाने से नियंत्रित करे ताकि किसी पर अन्याय-अत्याचार ना हो,

(III) परिस्थितिजन्य आधार पर अपने समाज के पक्ष में नियम-कानूनों को झुकाने का प्रयास करें,

(IV) सभी वंचित वर्गों के साथ दलितों का भी संतुलित विकास साधने के प्रयास के लिए, और

(V) भविष्य में भी दलित मुख्य प्रवाह से दूर अर्थात् विकास के अवसर से वंचित ना रहे इसकी गारंटी कराना।

उपरोक्त पांच बिंदु डॉ. अम्बेडकर के वंचितों के लिए न केवल नौकरी के क्षेत्र में बल्कि शैक्षणिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण मांगने के पीछे के उद्देश्य थे। यह बात अलग है कि देश स्वतंत्र होने के 65 वर्षों बाद एस.सी.,एस.टी.,ओ.बी.सी. नौकरी में रहते हुए अपने-अपने सामाजिक समुदायों को कितना सहकार्य कर सकें और कितना न्याय दे सकें? आरक्षण की कितनी रिक्तियां सरकार द्वारा भरी गई और कितनी रिक्त रखी गई? इससे पिछड़े वर्ग कितनी प्रगति कर सके और सामाजिक न्याय कितना हो सका? समता का लक्ष्य कितना पूरा हो सका और कितना पूरा किया जाना अभी बाकी है और उसे पूरा करने में कितना और समय लगेगा? □

(लेखक अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग संस्कृति विद्यापीठ म.गा. अं. हिं. वि.वि., वर्धा महाराष्ट्र के पूर्व शोधार्थी रहे हैं)

ग्राम–स्वराज्य : गांधी बनाम डॉ. अम्बेडकर

■ डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'

गाँव का नाम आते ही दिल–दिमाग में मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियां गूंजने लगती हैं–'भारतमाता ग्रामवासिनी!' बचपन से सुनते आए हैं कि 'भारत गाँवों का देश है' और 'भारत की आत्मा गाँवों में बसती है।' गांधी जी की 'ग्राम–स्वराज्य' की संकल्पना को लेकर भी बहुत महिमा मंडन किया जाता रहा है। सबसे पहले यहाँ यह देखना होगा यह 'गाँव' आखिर किसका है? उन यथास्थितिवादी लोगों का, जिनकी संख्या देश की कुल जनसंख्या का दस से पन्द्रह फीसदी हैं, और जो स्वयं कुछ न करते हुए भी सारे संसाधनों पर काबिज रहे हैं? अथवा दबा–सता कर शोषित–प्रताड़ित किए गए उन लोगों का, जिन्हें अछूत बनने और जानवर से भी बदतर जिंदगी जीने पर मजबूर किया गया? भारतीय गाँवों को नजदीक से देखने पर साफ हो जाता है कि ये गाँव ही हैं जो दलितों के शोषण–उत्पीड़न व गुलामी के सर्वाधिक क्रूर और प्रभावशाली केन्द्र हैं। कालांतर से लेकर अब तक वर्ण–व्यवस्था और अस्पृश्यता को जिसने सबसे ज्यादा मजबूती प्रदान की है, वे भारत 'माता' के दुलारे गाँव ही हैं। गाँवों को लेकर अब तक जो लोग गौरवमयी, स्वप्निल और मनोरम चित्र खींचते रहे हैं, वे प्रभु वर्ग के वर्चस्वशाली लोग हैं, जिनके लिए गाँव सचमुच में उनका 'स्वर्ग' है। गांधी जी भी गाँवों को लेकर खासा भावुक और उत्साहित रहते थे। लेकिन उनके समानान्तर बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की नजर में 'गाँव अछूत समुदाय के लिए अभिशाप के अलावा और कुछ नहीं हैं।' काश, गांधी जी दलित प्रश्न पर ईमानदार और निरपेक्ष होते तो वे डॉ. अम्बेडकर की नजर से गाँवों को देखते और फिर उन्हें भारत में 'ग्राम–स्वराज्य' की हकीकत समझ में आ जाती।

बाबासाहेब ने स्पष्ट रूप से गाँवों को जातिवाद और वंचना का सबसे बड़ा पोषक बताया। अपनी पुस्तक 'अनटचेबल्स ओर दि चिल्ड्रेन ऑफ इंडियाज गेटो' में उन्होंने कहा, ''सामंती सवर्ण हिंदुओं का गाँव सामंती सवर्ण हिंदुओं की समाज–व्यवस्था की मानो प्रयोगशाला है। गाँव में गैरबराबरी पर आधारित मनुवादी सामन्ती समाज–व्यवस्था का पूरा–पूरा पालन होता है। जब कभी कोई सवर्ण भारतीय गाँवों का जिक्र करता है तो वह उल्लास से भर उठता है। वह उन्हें समाज–व्यवस्था का आदर्श स्वरूप मानता है।'' यह उल्लास वास्तव में प्रभु वर्ग के वर्चस्व को बनाए रखने में गाँवों की भूमिका का उल्लास है। यहाँ यह सब विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है कि गाँवों में दलितों के रहने, उठने–बैठने, चलने–फिरने, शादी–विवाह, त्योहार–उत्सव और जीविकोपार्जन आदि को लेकर तीन हजार साल से किस तरह के घोषित सामाजिक विधान लागू किए जाते रहे हैं! भारत एक कृषि प्रधान देश है तो क्या यह बात समाज के सभी तबके के लिए समान रूप से लागू होती है ? गाँवों में दलित हमेशा से भूमिहीन मजदूर रहे हैं। गंदा और घृणित माने जाने वाले सारे काम करने के लिए उनको मजबूर किया जाता रहा है। मजदूरी के रूप में भी उनको पैसे न देकर अनाज आदि दिए जाते रहे हैं। बेगारी और बन्धुआ मजदूरी आज भी गाँवों की एक बड़ी सच्चाई है। आजादी के पैंसठ सालों बाद भी छुआछूत का क्रूरतम रूप गाँवों में देखने को मिलता है। गाँवों में दलितों के लिए आजीविका के रास्ते हमेशा से बंद रहे हैं। शोषण–उत्पीड़न की अगर बात की जाए तो लक्ष्मणपुर बाथे, बेलछी, गोहाना, झज्जर, चकवाड़ा, मिर्चपुर से लेकर खैरलांजी तक की नृशंस और हृदय विदारक

घटनाएँ गाँवों में ही घटित होती रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में आरक्षण के चलते ग्राम-पंचायतों में दलित सरपंच, मुखिया, प्रधान आदि की उपस्थिति दिखने लगी है। लेकिन इसके अंदर के सच को खंगालें तो पता चलता है कि तमाम गाँवों मे वहाँ के सवर्ण और दबंग लोग अपने यहाँ काम करने वाले दलित नौकर-चाकर, हलवाहे, ड्राइवर आदि को ही जोड़-तोड़ करके चुनाव में विजयी बना देते हैं। फिर सही मायनों में वे मालिक लोग ही राज करते हैं और पद पर बैठा दलित उनके हाथ की कठपुतली होता है। कई जगह दलित प्रधानों को ग्राम-सभा में नहीं घुसने देने, कुर्सी पर नहीं बैठने देने और अवसर विशेष पर राष्ट्रीय झण्डा तक न फहराने देने की घटनाएँ आज भी बहुतायत में होती रहती हैं। सरकार की **'मिड डे मिल योजना'** के तहत् कई सारे गाँवों में दलित बच्चों को खाना न देने तथा उन्हें अलग पांत में बैठाने के वाकये भी होते रहते हैं। इन सारी स्थितियों में यदि दलित वर्ग द्वारा थोड़ा-सा भी प्रतिरोध होता है तो इसके भयानक और दर्दनाक परिणाम पूरे दलित समुदाय को भुगतने पड़ते हैं। दलित दूल्हे को घोड़ी पर न चढ़ने देना, सवर्ण इलाके से होकर साइकिल चलाते हुए या पैदल चप्पल पहनकर न जाने देना, घी खा लेने और नया कपड़ा पहन लेने पर सामूहिक पिटाई करना, खेत से मूली या साग उखाड़ लेने पर दलित लड़की के साथ मार-पिटाई और सामूहिक बलात्कार की फेहरिश्त भारतीय गाँवों के ही नाम दर्ज हैं। इन गाँवों में दलितों के लिए 'ग्राम-स्वराज्य' का कोई मतलब नहीं रह जाता है ?

अकारण नहीं कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने इस 'ग्राम-स्वराज्य' की बखिया उधेड़कर रख दी। भारतीय गाँवों के सामाजिक-आर्थिक जीवन की गहरी छानबीन करते हुए उन्होंने गाँवों को गण ात्न्त्र का दुश्मन बताया है। वे जोर देकर कहते हैं कि ''इस गणतन्त्र में लोकतन्त्र के लिए कोई स्थान नहीं। इसमें समता के लिए स्थान नहीं। इसमें स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं। इसमें भ्रातृत्व के लिए कोई स्थान नहीं। भारतीय गाँव गणतन्त्र का ठीक उल्टा रूप है। अगर कोई गणतन्त्र है तो यह स्पृश्यों का गणतन्त्र है, स्पृश्यों के द्वारा है और उन्हीं के लिए है। यह गणतन्त्र अस्पृश्यों पर स्थापित सामंती सवर्ण हिंदुओं का एक विशाल साम्राज्य है। यह सामंती सवर्ण हिंदुओं का एक प्रकार का उपनिवेशवाद है, जो अस्पृश्यों का शोषण करने के लिए है।'' यही कारण था कि डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को गाँव छोड़कर शहर जाने और वहीं बसने का रास्ता सुझाया था। उन्होंने नगरीकरण और आधुनिकता की भी बड़ी वकालत की थी। शहर में आजीविका के साधनों की प्रचुरता है और वहाँ जातिवाद का वह घिनौना रूप नहीं है। शिक्षा के दरवाजे दलित बच्चों के लिए सुगम हैं। दलित महिलाओं के लिए भी रोजगार के रास्ते खुले हुए हैं। आज के संदर्भ में देखें तो यह पता चलेगा कि जो भी दलित गाँव छोड़कर शहर चले गए, उनकी अगली पीढ़ी तरक्की के रास्ते पर चल पड़ी। इसके विपरीत जो दलित गाँव में ही रह गए, उनकी कई पीढ़ियाँ वैसी की वैसी ही रह गईं। ☐

(लेखक चर्चित युवा अम्बेडकरवादी विश्लेषक हैं और संप्रति म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा में साहित्य विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं।)

> **''भारतीय गाँवों को नजदीक से देखने पर साफ हो जाता है कि ये गाँव ही हैं जो दलितों के शोषण-उत्पीड़न व गुलामी के सर्वाधिक क्रूर और प्रभावशाली केन्द्र हैं। कालांतर से लेकर अब तक वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता को जिसने सबसे ज्यादा मजबूती प्रदान की है, वे भारत 'माता' के दुलारे गाँव ही हैं। गाँवों को लेकर अब तक जो लोग गौरवमयी, स्वप्निल और मनोरम चित्र खींचते रहे हैं, वे प्रभु वर्ग के वर्चस्वशाली लोग हैं, जिनके लिए गाँव सचमुच में उनका 'स्वर्ग' है। गांधी जी भी गाँवों को लेकर खासा भावुक और उत्साहित रहते थे। लेकिन उनके समानान्तर बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर की नजर में 'गाँव अछूत समुदाय के लिए अभिशाप के अलावा और कुछ नहीं हैं।'**
>
> **''सामंती सवर्ण हिंदुओं का गाँव सामंती सवर्ण हिंदुओं की समाज-व्यवस्था की मानो प्रयोगशाला है। गाँव में गैरबराबरी पर आधारित मनुवादी सामन्ती समाज-व्यवस्था का पूरा-पूरा पालन होता है। जब कभी कोई सवर्ण भारतीय गाँवों का जिक्र करता है तो वह उल्लास से भर उठता है। वह उन्हें समाज-व्यवस्था का आदर्श स्वरूप मानता है।''**

राष्ट्रीय समुद्रपारीय छात्रवृत्ति योजना

उद्देश्य

इस योजना के अंतर्गत विदेश में अध्ययन के विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रमों तथा पीएचडी कार्यक्रम में पढ़ने वाले अनुसूचित जाति, अनधिसूचित खानाबदोश, अर्धखानाबदोश जनजातियों, भूमिहर श्रमिक तथा परम्परागत कारीगरों से संबंधित चयनित छात्रों को सहायता प्रदान की जाती है।

मुख्य विशेषताएं

इस योजना में वास्तविक की शर्त पर संस्थान द्वारा प्रभारित फीस, मासिक भरण-पोषण भत्ता, वीजा फीस, तथा बीमा प्रीमियम आदि, वार्षिक आकस्मिकता भत्ता, प्रासंगिक यात्रा भत्ता प्रदान किए जाते हैं।

इस योजना के अंतर्गत लाभ पाने के लिए एक माता-पिता/अभिभावक का केवल एक बच्चा पात्र होगा।

भावी छात्रवृत्ति प्राप्तकर्ता की आयु 35 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

प्रत्येक वर्ष प्रदान की जाने वाली छात्रवृत्तियों की संख्या 30 है तथा 30% छात्रवृत्तियाँ महिला उम्मीदवार के लिए निर्धारित की गई हैं।

इस योजना के अंतर्गत वित्तीय सहायता पी एच डी कार्यक्रम के लिए अधिकतम 4 वर्ष की अवधि के लिए तथा स्नाताकोत्तर कार्यक्रम के लिए 3 वर्ष की अवधि के लिए प्रदान की जाती है। उपयुक्त पाठ्यक्रमों के स्तर के लिए निर्धारित अवधि से अधिक समय तक ठहरने पर भारत लौटने के हवाई यात्रा खर्च को छोड़कर किसी भी अन्य प्रकार की वित्तिय सहायता के बिना तभी विचार किया जा सकता है जब शैक्षिक संस्थान/विश्वविद्यालय के सक्षम संबंधित प्राधिकारी के साथ-साथ विदेश स्थित भारतीय मिशन की सिफारिश इस सत्यापन पत्र के साथ प्राप्त हो कि निर्धारित अवधि से अधिक समय तक का ऐसा ओवरस्टे पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

नियोजक द्वारा यथा सत्यापित नियोजित उम्मीदवार अथवा उसके माता-पिता/अभिभावक की सभी स्रोतों से कुल आय 25000 रूपए (पच्चीस हजार रूपए केवल) प्रतिमाह से अधिक न हो (ऐसे भत्तों को छोड़कर जिनकी गणना आयकर के प्रयोजनार्थ कुल आय के रूप में नहीं की जाती।)

स्वीकार्य भत्तों की दरें

इस योजना के अंतर्गत स्वीकार्य भत्तों की वर्तमान दरें इस प्रकार है

स्वीकार्य भत्तों की वर्तमान दरें (9.7.2007 से प्रभावी)

मदें	यूके में स्वीकार्य धनराशि (ग्रेट ब्रिटेन पाउण्ड में)	यूएस तथा अन्य देशों में स्वीकार्य धनराशि (यूएस $)
वार्षिक भरण-पोषण भत्ता	9000	14000
वार्षिक आकस्मिकता भत्ता	1000	1375
प्रासंगिक यात्रा भत्ता	17 यूएस $ के समतुल्य	
उपस्कर भत्ता	1200 रूपए	
पोल टैक्स	वास्तविक राशि	
वीजा फीस	भारतीय रूपय में वास्तविक वीजा फीस	
फीस तथा चिकित्सा बीमा प्रीमियम	यथा प्रभारित	
स्थानीय यात्रा	द्वितीय श्रेणी अथवा कोच श्रेणी फेयर	

अध्ययन के विशिष्टीकृत क्षेत्र

इस योजना के अंतर्गत इसके कार्यक्षेत्र को बढ़ाने तथा अधिक छात्रों को लाभ पहुंचाने के लिए निम्नलिखित विषयों को शामिल करने के लिए चयन वर्ष 2010-11 के लिए इस योजना को संशोधित किया गया है :

चिकित्सा

विज्ञान

इंजीनियरिंग
कृषि विज्ञान तथा
प्रबंधन

न्यूनतम अर्हता

(क) पी.एच.डी. : संबंधित स्नाताकोत्तर डिग्री में प्रथम श्रेणी या 60% अंक या समक्षक श्रेणी। अनुभवी अभ्यर्थियों को वरीयता दी जाएगी जो विशेषरूप से अपने वर्तमान पद और नियोक्ता के साथ ग्रहणाधिकार रखते हों।

(ख) स्नातकोत्तर डिग्री हेतु : संबंधित स्नातक डिग्री में प्रथम श्रेणी या 60% अंक या समक्षक श्रेणी। अनुभवी अभ्यर्थियों को वरीयता दी जाएगी जो विशेषरूप से अपने वर्तमान पद और नियोक्ता के साथ ग्रहणाधिकार रखते हों।

वित्तिय सहायता

अनुसंधान/अध्यापन सहायता से उपार्जन

लाभार्थियों को अनुसंधान/अध्यापन सहयोगिता का कार्य करके 2400 (दो हजार चार सौ) अमेरिकी डालर प्रति वर्ष तक तथा ब्रिटेन में लाभार्थियों को 1560 (एक हजार पाँच सौ साठ) ग्रेट ब्रिटेन पौंड प्रति वर्ष तक अपने निर्धारित भत्तों को अनुपूरित करने की अनुमति है और इस निर्धारित सीमा से अधिक होने पर इस योजना के अंतर्गत उनका भरण-पोषण भत्ता तद्नुरूप विदेश स्थित भारतीय मिशनों द्वारा कम कर दिया जाएगा।

भारत सरकार द्वारा निर्धारित स्थाप पर अभ्यर्थियों के साक्षात्कार में उपस्थित होने के लिए, उनके निवास स्थान के नगर से उस नगर तक जहां भारत सरकार ने चयन हेतु साक्षात्कार का आयोजन किया है, के लिए द्वितीय श्रेणी का रेल किराया/सामान्य बस किराया देय होगा।

उपर्युक्त वित्तीय सहायता के भुगतान के तरीके का निर्णय भारत सरकार तथा विदेश स्थित भारतीय दूतावासों द्वारा किया जाएगा।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का अंतिम संदेश

"मैं बहुत मुश्किल से इस कारवां को इस स्थिति तक लाया हूँ, जहां यह आज दिखाई दे रहा है। इस कारवां को आगे बढ़ने ही देना है, चाहे कितनी ही बाधाएं, रुकावटें या परेशानियाँ इसके रास्ते में क्यों न आएं। यदि मेरे लोग, मेरे सेनापति इस कारवां को आगे नहीं ले जा सकें तो उन्हें इसे यहीं, इसी दशा में छोड़ देना, पर किसी भी हालत में कारवां को पीछे मोड़ने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।"

भारत में जातियां : बाबासाहेब की जुबानी एक टिप्पणी

■ संजीव कुमार

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने 1916 में 'भारत में जातियाँ, उनके तंत्र, उद्गम एवं विकास' नामक लेख कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एंथ्रोपोलॉजी सेमिनार में प्रस्तुत किया, जिसे इंडियन एन्टीक्यूइटी वाल्यूम XLI मई 1917 में प्रकाशित किया गया। इस लेख को हालांकि अम्बेडकर के द्वारा लिखे गये सबसे महत्वपूर्ण रचना एन्नीहिलेशन ऑफ कास्ट के मुकाबले बहुत ही कम पढ़ा गया है, परन्तु इस लेख को करीब से पढ़ने के बाद बाबासाहेब के दर्शन की बहुत से संदर्भो की शुरुआत दिखती है। इस लेख को बाबासाहेब की जुबानी पढ़ने का तात्पर्य इसे उनके समय के संदर्भ से जोड़ते हुए उनकी भाषा के बोधों पर विचार करने से है। प्रस्तुत लेख का मकसद बाबासाहेब के लेख को समाज के वर्तमान समय से जोड़ते हुए देखने से भी है।

बाबासाहेब कहते हैं कि जाति की गुत्थी को उजागर करने के लिए बहुत से महत्वपूर्ण कार्य एवं शोध हो चुके हैं, परन्तु सभी शोध दुर्भाग्यवश केवल 'अस्पष्टीकृत' के दायरे में रह गए हैं। जाति की समस्या सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों अर्थों में ही बड़ी है। व्यावहारिक तौर पर यह एक संस्था है जिससे जबर्दस्त परिणामों का संकेत मिलता है हालांकि यह एक स्थानीय समस्या है, परन्तु यह भयंकर शरारत करने के लिए सक्षम है। जब तक जाति भारत में विद्यमान है, तब तक हिंदू बिल्कुल भी न तो अंतर्विवाह करेंगे, न ही बाहरी लोगों के साथ कोई सामाजिक सम्बन्ध बनाएंगे और अगर हिंदू पृथ्वी के किसी भी दूसरे क्षेत्र में शरण लेते हैं तो भारत की जाति की समस्या विश्व की समस्या बन जाएगी। चूंकि जाति की समस्या बहुत बड़ी है इसलिए इसके अन्य पहलुओं को अलग रखते हुये बाबासाहेब ने सिर्फ इसके तंत्र, उद्गम एवं विकास पर छोड़ दिया। बाबासाहेब की उपरोक्त बातों से यह प्रतीत होता है, कि जाति एक ऐसी समस्या है जो समय और जगह से बंध कर नहीं रह सकती, इसके समर्थक हिंदू किसी भी समय किसी भी जगह जाति की संरचना को बढ़ाते रहते हैं। यह एक संक्रामक रोग की तरह है जिसके पीछे शादी-विवाह की परम्परा का चलन सहायक की तरह कार्य करता है।

जाति का उद्गम

बाबासाहेब बताते हैं कि, जैसाकि एथ्नोलोजिस्टस ने भारत को आर्यन, द्रविड़ियन, मंगोलियन एवं सिक्थियन का मिलावट बताया है, ये सभी भारत में सदियों पहले विभिन्न दिशाओं से विभिन्न संस्कृतियों के साथ आए और बस गए। चूंकि सबकी संस्कृतियाँ अलग-अलग थी, परन्तु लगातार हो रहे सामाजिक निकटता के कारण एक समान संस्कृति का निर्माण किया गया। परन्तु यह समान संस्कृति का बनाना केवल संस्कृतियों का सम्मेलन था न कि सजातीयकरण था। बाबासाहेब ने समान होने तथा सम्मेलन होने को सजातीयकरण से बिल्कुल अलग किया। अतः भारत में एक सजातीय संस्कृति का निर्माण कभी नहीं हो पाया। परंतु सांस्कृतिक सम्मेलन को सांस्कृतिक सजातीयकरण समझ लेने से जाति की समस्या बहुत बड़ी हो जाती है। क्योंकि जाति का निर्माण मौजूदा सजातीय इकाई के टुकड़े करने के लिए किया गया। दूसरे शब्दों में कहें तो जाति की उत्पत्ति की

व्याख्या का तात्पर्य 'टुकड़े करने की प्रक्रिया' से है। अर्थात् जाति की उत्पत्ति के पीछे अलग-अलग संस्कृतियों के लोगों का सम्मेलन होना एवं उनको फिर से टुकड़ों में विभाजित कर प्रभुत्व कायम करने की कहानी है। अगर आज के समय में देखें तो यह प्रक्रिया हमें हर जगह दिखता है जिसकी चर्चा इस लेख के अंत में की जाएगी।

बाबासाहेब जाति की उत्पत्ति की चर्चा को आगे बढ़ाते हुये यह बताते हैं कि जाति की उत्पत्ति से उनका तात्पर्य सगोत्र विवाह के तंत्र की उत्पत्ति से है। परन्तु क्यों ऐसी व्यवस्था बनाई गई। इस पर, बाबासाहेब का विचार वर्ग से सम्बन्धित है। वे कहते हैं कि यह बात समझना बड़ा मुश्किल होगा कि समाज व्यक्तियों से बना है, क्योंकि समाज वर्गों से बना है न कि व्यक्ति से। वर्ग संघर्ष के सिद्धांत से समुदाय को समझना मुश्किल होगा क्योंकि निश्चित वर्गों का समाज में होना एक सच्चाई है। वर्ग किसी भी रूप में पाया जा सकता है, वर्ग का अर्थ केवल आर्थिक वर्ग से नहीं। अतः कोई भी व्यक्ति किसी न किसी वर्ग का सदस्य जरूर होता है चाहे वो आर्थिक, सामाजिक या बौद्धिक वर्ग से हो। एवं हिंदू समाज भी कभी इस वर्गीकरण के दायरे से बाहर नहीं आ पाया। बात सिर्फ यह समझने की है कि कौन सा वर्ग कौन सी जाति का रूप धारण करता है। अतः जाति एक बंद वर्ग है । इस वर्ण व्यवस्था का निर्माण करने वाले वही जाति के हैं जो सगोत्र विवाह की प्रथा के समर्थक थे अर्थात् ब्राह्मण। सगोत्र विजातीय विवाह प्रथा की चर्चा नीचे के भाग में की गई है।

भारतीय जाति की समस्या सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों अर्थों में ही बड़ी है। व्यावहारिक तौर पर यह एक संस्था है जिससे जबर्दस्त परिणामों का संकेत मिलता है हालांकि यह एक स्थानीय समस्या है, परन्तु यह भयंकर शरारत करने के लिए सक्षम है। जाति एक ऐसी समस्या है जो समय और जगह से बँध कर नहीं रह सकती, इसके समर्थक जातिवादी किसी भी समय किसी भी जगह जाति की संरचना को बढ़ाते रहते हैं। यह एक संक्रामक रोग की तरह है जिसके पीछे शादी-विवाह की परम्परा का चलन सहायक की तरह कार्य करता है।

जाति के तंत्र

बाबासाहेब अपने लेख में जाति के उद्भव की गाथा को उजागर करते हुये मिस्टर सेनार्ट, मिस्टर नेसफील्ड, मिस्टर रिसले, डॉ केतकर इत्यादि के द्वारा दी गई जाति की परिभाषाओं का अवलोकन करते हैं। वे कहते हैं कि मौजूद परिभाषाओं में से किसी ने जाति व्यवस्था के मुख्य बिन्दु पर ध्यान नहीं दिया है। इनकी कमी इस बात में रह गई कि इन्होंने जाति को एक अलग इकाई की तरह देखा है और इस बात को अनदेखा कर दिया कि जाति एक सम्पूर्ण व्यवस्था है जिसमें विभिन्न समूहों के बीच निश्चित सम्बन्ध स्थापित हैं। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सभी लेखकों ने कुछ-कुछ महत्वपूर्ण बातें जाति के संदर्भ में की है।

मिस्टर सेनार्ट की परिभाषा पर प्रकाश डालते हुये बाबासाहेब ने कहा कि 'विशुद्धि का विचार' जाति का आधार नहीं है यह सिद्धान्त आमतौर पर पुरोहित प्रथावाद में उत्पन्न होता है। इसकी जरूरत शुद्धि के संदर्भ में निहित है। फलस्वरूप 'विशुद्धि का विचार' को पूर्णरूपेण अलग किया जा सकता है बिना जाति के कार्यकलाप को ठेस पहुंचाए। 'विशुद्धि का विचार' को जाति की संस्था से जोड़ने का तात्पर्य सिर्फ पुरोहित वर्ग को सबसे ऊँचे दर्जे पर रखा जाए, ऐसे विचार सदियों से चले आ रहे हैं। अतः 'विशुद्धि का विचार' जाति का गुण तब तक है जब तक जाति में धर्म का स्वाद हो। अर्थात् अम्बेडकर शुद्धि और विशुद्धि को जाति के तंत्र में सबसे मुख्य न मान कर एक अंग मानते हैं इसकी जरूरत सिर्फ जाति को धर्म से जोड़े रखने से है, जिसकी खासियत महत्वपूर्ण है जाति व्यवस्था को बनाए रखने में।

मिस्टर नेसफील्ड की परिभाषा पर विचार करते हुये अम्बेडकर का कहना है कि एक जाति का दूसरी जाति के साथ समागम पर प्रतिबन्ध लगाना कारण नहीं बल्कि परिणाम है। जाति एक स्वमेव बंद इकाई है, जिसमें प्राकृतिक रूप से सामाजिक समागम पर लगाम लगी है, जिसमें कोई खिलवाड़ समूह के अंदर के सदस्यों के बीच सम्भव नहीं है। फलस्वरूप जाति व्यवस्था में बाहरी समूहों या वर्गों के साथ कोई समागम या खिलवाड़ न करना, जाति व्यवस्था के अन्दर का तंत्र है यही इसकी खासियत है जो आगे चल कर धार्मिक निषेधाज्ञा का रूप ग्रहण कर लेता है। अतः सामाजिक समागम या खिलवाड़ जाति का महत्वपूर्ण तंत्र है न कि मुख्य या आधारभूत तंत्र है, जो कारण नहीं बल्कि परिणाम है।

अम्बेडकर ने डॉ केतकर की परिभाषा को बहुत हद तक महत्व दिया, क्योंकि वो जाति की परिभाषा में जाति की व्यवस्था को जाति से जोड़ कर व्याख्या करते हैं। केतकर के अनुसार दो बातें जाति व्यवस्था

को परिभाषित करती हैं पहला–'अन्तर्जातीय विवाह का निषेध' एवं दूसरा 'सहज जनन या अस्तप्रजनन द्वारा सदस्यता'। परंतु अम्बेडकर इन दोनों बिन्दुओं को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं, जो जाति व्यवस्था को समझने के लिए मुख्य बिन्दुओं में से एक है। क्योंकि, अगर आप अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबन्धु लगाते हैं तो स्वत: ही सदस्यता को भी बाधित करते हैं।

'अन्तर्जातीय विवाह का निषेध' को 'सगोत्र विवाह' एंडोगामी कहा जाता है, जिसे अम्बेडकर जाति व्यवस्था का सार मानते हैं। अम्बेडकर यह भी मानते हैं कि, दूसरे देशों और समुदायों में भी सगोत्र विवाह का प्रचलन है, जहां जाति का कोई सरोकार नहीं है, परंतु भारत की स्थिति भिन्न है। क्योंकि भारत के लोग एक 'सजातीय सम्पूर्ण' का निर्माण करते हैं, जिसका आधार सांस्कृतिक समानता एवं सम्मेलन है। इस प्रकार की सजातीय आधार के समाज में जब सगोत्र विवाह को लाया जाता है तो यह जाति व्यवस्था की कठिनाई को उजागर करता है। अत: भारत में जाति का मतलब जनसंख्या को कृत्रिम ढंग से निश्चित ईकाईयों में विभाजित करना है, जिसमें सगोत्र विवाह प्रथा के द्वारा प्रत्येक को दूसरी इकाई के साथ जुड़ने से रोकना। फलस्वरूप सगोत्र विवाह ही धुरी है भारत में जाति व्यवस्था को कायम करने के लिए।

जाति व्यवस्था का रख-रखाव

भारत में धर्म की पौराणिक व्यवस्था की प्रगाढ़ विषय वस्तु आज भी मौजूद है। बाबासाहेब के अनुसार, प्राचीन ताकतों में से एक विजातीय विवाह की प्रथा भारत में बहुत प्रचलित थी, परन्तु समाज के विकास के साथ इसकी महत्ता कम हुई। उसी जगह सगोत्र विवाह की प्रथा, भारत में नहीं थी। परन्तु, जाति व्यवस्था को कायम करने के लिए, सगोत्र विवाह की प्रथा को सही मानते हुये विजातीय विवाह को बदल दिया गया। विजातीय विवाह की प्रथा भारत में बहुत कड़े कायदे कानून के साथ माना जाता था, जिसके कारण एक जाति के लोग दूसरी जाति से शादी विवाह करते थे। जाति कोई समस्या नहीं थी। सही मायने में विजातीय विवाह के संदर्भ में जाति का निर्माण ही संभव नहीं था। जैसे ही सगोत्र विवाह की प्रथा आयी, जाति भी आ गयी। अब चूंकि जाति एवं गोत्र को विवाह के लिए महत्वपूर्ण बनाया गया, जिसमें समान गोत्र में शादी ही वैध मानी गई, इससे बहुत से और तंत्र की उत्पत्ति हुई।

अब सगोत्र विवाह की प्रथा को चलाने के लिए दोनों लिंगों में समानता रखना भी जरूरी है, अन्यथा असमान संख्या होने के कारण लोग सगोत्र विवाह के प्रचलन को तोड़कर विजातीय विवाह की प्रथा को अपना लेंगे। परन्तु, चूंकि प्रकृति का कोई भरोसा नहीं, दोनों पत्नी या पति में से कोई भी पहले मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। इस संदर्भ में दो स्थिति उत्पन्न होती हैं। अगर पति का देहांत हो जाता है, तो विधवा औरत सरप्लस वूमेन बन जाती है, जिसके कारण महिलाओं की संख्या में बढ़ोतरी हो जाती है और यह सगोत्र विवाह की प्रथा के लिए खतरनाक है। इसलिए इस सरप्लस वूमेन का इस प्रकार निपटारा किया जाए जिससे संख्या में असमानता न आ पाये।

डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि ऐसी स्थिति में सरप्लस वूमेन का दो तरीके से निपटारा किया जा सकता है। पहला कि उसे जला दिया जाये, जिस वक्त उसके पति को जलाया जाता है। परन्तु यह तरीका असंभव है, फिर या तो उसकी शादी करा दी जाए नहीं तो वो किसी भी दूसरे व्यक्ति के साथ या दूसरी जाति में सम्बन्ध बनाएगी जो कि जाति के सगोत्र विवाह के लिए खतरनाक है। अगर उसकी शादी फिर से कराई जाती है तो वर की समान संख्या पर प्रभाव पड़ेगा और जो शादी के लायक महिला है उसके वर में कमी आ जायेगी। अत: दूसरा उपाय उसके लिए यही है कि उसके लिए विधवा प्रथा का प्रचलन कर दिया जाए। इस तरह, सरप्लस वूमेन के लिए विधवा प्रथा ही एक उत्तम उपाय दिखता है, जिसमें सारी समस्याओं का समाधान है। इस प्रकार विधवा औरत को सारी सुख सुविधावों से बाहर रखा जाता है। उनके साथ हुये बरताव

बाबासाहेब कहते हैं कि अगर पत्नी का देहांत हो जाए तो विधुर पति सरप्लस मैन बन जाता है, जो उसी प्रकार जाति के सगोत्र विवाह की प्रथा के लिए हानिकारक है। परंतु सदियों से मर्दों को श्रेष्ठ माना गया है इसलिए जो व्यवस्था विधवाओं के लिए की गयी वही व्यवस्था विधुर के लिए लागू नहीं होती है, क्योंकि वह बहुत ही महत्वपूर्ण है समूह के लिए। उसके लिए पुन: शादी की व्यवस्था है। वैसे जिस लड़की की अभी शादी की उम्र नहीं हुई है लेकिन सरप्लस मेन से शादी करनी है तो कम उम्र की लड़की से शादी कर देना तो बाल-विवाह को बढ़ावा देना है।

एवं जीवन के बारे में विस्तार से लिखने की जरूरत है।

बाबासाहेब कहते हैं कि अगर पत्नी का देहांत हो जाए तो विधुर पति सरप्लस मैन बन जाता है, जो उसी प्रकार जाति के सगोत्र विवाह की प्रथा के लिए हानिकारक है। परंतु सदियों से मर्दों को श्रेष्ठ माना गया है इसलिए जो व्यवस्था विधवाओं के लिए की गयी वही व्यवस्था विधुर के लिए लागू नहीं होती है, क्योंकि वह बहुत ही महत्वपूर्ण है समूह के लिए। उसके लिए पुनः शादी की व्यवस्था है। वैसे जिस लड़की की अभी शादी की उम्र नहीं हुई है लेकिन सरप्लस मेन से शादी करनी है तो कम उम्र की लड़की से शादी कर देना तो बाल-विवाह को बढ़ावा देना है। इस प्रकार, मजबूर विधवा प्रथा, बालिका विवाह एवं सती जैसी प्रथाओं का प्रचलन हिंदू समाज में जाति व्यवस्था के तंत्र की तरह कार्य करते रहे हैं।

इस संदर्भ में बाबासाहेब का कहना है कि, बहुत से दर्शन हैं जिन्होंने इन सामाजिक बुराईयों के समर्थन में बातें लिखी हैं, परन्तु इनकी उत्पत्ति एवं तंत्र पर किसी ने ध्यान आकर्षित नही किया। जाति व्यवस्था का सम्मान किया जाता है क्योंकि इसका अभ्यास किया जाता है। बाबा साहबे ने इस बात पर जोर देते हुये कहा कि सती, जबर्दस्ती विधवा प्रथा एवं बालिका विवाह जैसी कुप्रथाओं का निर्माण सरप्लस मेन और सरप्लस वमू ने की समस्या को ठीक करने के लिए बना था जिससे सगोत्र विवाह को कायम रखा जा सके। अतः मजबूत सगोत्र विवाह नामुमकीन है बिना ऐसी प्रथाओं के, उसी प्रकार जाति व्यवस्था भी नामुमकीन है बिना सगोत्र विवाह की प्रथा के।

जाति व्यवस्था का विकास

जाति व्यवस्था के तंत्र की चर्चा करने के बाद, बाबासाहेब ने, इसकी उत्पत्ति की बात को निश्चित वर्गों के सिद्धांत से जोड़ा। एवं जब समाज वर्गों में विभाजित था। एवं ब्राह्मण वर्ग में सगोत्र व्यवस्था को कायम रखने की बात पर जाति को और भी मजबूत बनाया गया। जाति की उत्पत्ति और इसके विकास की गाथा कुछ अलग नहीं है बल्कि बहुत मजबूती से जुड़ी हुई है। बाबासाहेब कहते हैं कि हर समाज में कानून बनाने वाला होता है। भारत के संदर्भ में मनु ने इस कार्य को अंजाम दिया। परन्तु इस बात को कहना बिल्कुल उचित है कि जाति व्यवस्था बहुत पहले से देश में मौजूद थी। मनु ने इस जाति व्यवस्था का दार्शनिकीकरण कर दिया। उसने पहले से मौजूद जाति व्यवस्था का संहिताकरण कर जाति धर्म को स्थापित कर दिया, उसके उपरांत शास्त्रों के द्वारा जाति व्यवस्था को संगठित कर दिया गया।

जाति व्यवस्था के विकास के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका हैं जैसे, रोजगार, ट्राइबल संस्थाओं का बचे रहना, नए विश्व का विकास, संकरण एवं विस्थापन। बाबासाहेब ने कहा कि ऐसी व्यवस्थाएँ और भी समाजों मे पाई जाती रही हैं, परन्तु उन समाजों में जाति व्यवस्था का विकास क्यों नहीं हुआ? अम्बेडकर इस पर कहते हैं कि, हम सबको पता है कि हिंदू समाज का निर्माण चार वर्गों से हुआ है। ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग, क्षत्रिय या सेना वर्ग, वैश्य या व्यापारी वर्ग, शूद्र या मजदूर वर्ग। खास बात यह है कि यह एक वर्ण व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने रोजगार को बदलकर वर्ण को बदल सकता था। ऐसी स्थिति में बहुत समय तक ब्राह्मण या पुरोहित वर्णों ने अपने-आप को दूसरे वर्गों से अलग रखा है एवं एक बंद दरवाजे की नीति से सगोत्र विवाह प्रथा को चलाने लगे। देखा-देखी दूसरे वर्गों ने भी समय के साथ ऐसा ही किया। यह बात ऐसी है जिसमें कहा जाए कि कुछ लोगों ने दरवाजे बंद किए और कुछ लोगो को दरवाजे बंद मिले बाबासाहेब ने इसके बारे में बताया कि इसमें पहला भाग मनोवैज्ञानिक व्याख्या का है तो दूसरा भाग यंत्रवत है, परंतु दोनों का होना ही जाति के बनाने की कहानी के पूर्णता को बताते हैं। इसकी नकल करने की प्रक्रिया को बाबासाहेब ने 'नकल का संक्रमण' बताया। जो जाति व्यवस्था के विस्तार के लिए जिम्मेदार है। इसी प्रक्रियाको अपनाते हुये दूसरे वर्णों ने वर्ण को जाति बना दिया। नकल के कानून की व्याख्या करते हुये बाबासाहेब, गैबरियल टरडे के दिये गये कानूनों की बातें करते हैं।

इस प्रकार, बाबासाहेब ने जाति के उद्गम तंत्र एवं विस्तार या विकास की चर्चा अपने लेख में बहुत ही साफ शब्दों में की है। जो बातें जाति व्यवस्था के विस्तार के लिये उन्होंने की, जो कि नकल की प्रक्रिया है, वो प्रक्रिया मानसिक रूप से आज भी समाज में बहुत ही प्रगाढ़ रूप से मौजूद है। गोपाल गुरु ने अपने लेख दलित मूवमेंट इन मेनस्ट्रीम सोशियोलॉजी में सोशल मोबिलिटी एवं श्रीनिवास ने सेन्स्ट्रीटाईजेशन के पहलुओं की चर्चा में मुख्यतः यह बताते हैं कि किस प्रकार आज भी नकल की प्रक्रिया चालू है। परन्तु इन दोनों लेखकों का कहना थोड़ा अलग है एवं उनका संदर्भ भी अलग है। परंतु यह बात बिल्कुल ही साफ है कि आज भी समाज में नकल का संक्रमण जारी है जिसके परिणाम भिन्न हैं एवं उन्हें देखने का नजरिया बदल गया है। दूसरी महत्वपूर्ण बात सगोत्र विवाह की है। आज भी शादियों का प्रचलन जाति के आधार पर होता है। जहां हम आधुनिकता की बात करते हैं वहीं, सगोत्र विवाह की प्रक्रिया पर जोर कम नहीं हुआ है, या यों कहें कि तेज ही हुआ है। आज जाति की समस्या देश के अलग-अलग क्षेत्रों में भी व्याप्त है जहाँ-जहाँ मनुवादी गये, इस व्यवस्था में कमी आने की जगह इसमें व्यापक विस्तार दिन-पर-दिन होता जा रहा है जिसमें आधुनिकता ने इसमें सहायता ही की है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग में शोधार्थी हैं)

दलित साहित्य पर डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव

■ नितिका गुप्ता

अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को 'हरिजन' और 'आदिवासी' कहकर सम्बोधित किया जाता था। पर दो-तीन दशकों से अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के लिए 'दलित' शब्द का अत्यधिक प्रयोग होने लगा है। बृहत् हिन्दी के अनुसार दलित शब्द का अर्थ है- रौंदा, कुचला, पदाक्रांत और दबाया हुआ व्यक्ति। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग सत्तर के दशक की शुरुआत में डॉ अम्बेडकर के नवबौद्ध अनुयायियों ने किया था। इनके अनुसार दलित वह है जो तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जे से ऊपर बैठे लोगों ने जान-बूझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है। इस शब्द में छुआछूत, कर्म-सिद्धान्त और जातिगत श्रेणीक्रम का नकार निहित है। इस प्रकार दलित शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयोग होता है जो सामाजिक संरचना में सबसे निचले पायदान पर अवस्थित है। इन्हें जन्मना अछूत समझा गया है। साथ ही इनका सवर्णों द्वारा अत्यधिक शोषण किया जाता रहा है।

दलित शब्द साहित्य के साथ मिलकर एक नई साहित्यिक धारा 'दलित साहित्य' का निर्माण करता है। दलित साहित्य वह है जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करता है। दलित चिन्तक कंवल भारती के अनुसार "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।" संदर्भ? अर्जुन डाँगले के अनुसार,"दलित यानि शोषित, पीड़ित समाज, धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है, वह मनुष्य और वही मनुष्य क्रान्ति कर सकता है। यह दलित साहित्य का विश्वास है।" डॉ. सी. बी. भारती के अनुसार, "दलित साहित्य नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। एवं जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य-सृजन है, उसे हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।" संदर्भ वहीं डॉ. हरिनारायण ठाकुर के अनुसार दलित साहित्य दलित चेतना की उत्कट और सार्थक अभिव्यक्ति है। यह जिस संवेदना, मानवीय मूल्य और सरोकारों की बात करता है, उसकी जड़ में सामाजिक न्याय, जातीय समरसता, समता, बन्धुत्व और सम्मान की भावना निहित है। इस प्रकार दलित साहित्य दलित दुर्दशा का सच्चा दस्तावेज है। यह स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता की बात करता है। साथ ही यह सामाजिक बदलाव का बिगुल भी बजाता है।

वर्तमान मे दलित साहित्य अखिल भारतीय स्वरूप ले चुका है। दलित साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव डॉ. भीमराव अम्बेडकर का दिखाई पड़ता है। डॉ. अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश की महू छावनी में महार जाति के परिवार में हुआ। उनका पैतृक गाँव रत्नागिरी जिले का अम्बावडे गाँव था। उनके पिता का नाम रामजी राव और माता का नाम भीमाबाई था। उनके पिता फौज में थे। जब वह पांच वर्ष के थे तब उनकी माता का देहांत हो गया। महाराष्ट्र में नाम के साथ गाँव का नाम 'कर' लगाकर लिखा जाता है इसलिए जब वह अपनी प्रारंभिक शिक्षा के लिए सतारा के एक सरकारी स्कूल में गए तो उनका नाम 'भीमराव अम्बावडेकर' लिखा गया। एक अम्बेडकर उपनाम के अध्यापक ने उनसे कहा कि 'अम्बावडेकर' बोलने में अटपटा लगता है, अतः तुम 'अम्बेडकर' उपनाम लिखा करो। बस तभी से उन्हें भीमराव अम्बेडकर कहकर सम्बोधित किया जाने लगा। कुशाग्र बुद्धि का होने के कारण वह शिक्षा-अर्जन करते रहते थे। सन् 1907 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् 1908 में 17 वर्ष की आयु में डॉ. अम्बेडकर का विवाह रमाबाई के साथ हुआ। उन्होंने बड़ौदा के महाराज द्वारा दी जाने वाली 25 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति के बलबूते सन् 1912 में बी. ए. की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। फिर वह उच्च शिक्षा के लिए विदेश चले गए। अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. और पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की। परंतु अचानक छात्रवृत्ति बंद किए जाने पर वह भारत लौट आए और बड़ौदा की सेना में सैन्य सचिव के पद पर कार्य करने लगे। लेकिन रियासत की सेवा में उन्हें अनेक प्रकार के अपमान झेलने पड़े। बाद में वह

बम्बई के सिडनेम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकॉनोमिक्स में प्रोफेसर हो गए। 1920 में कोल्हापुर के शाहू जी महाराज द्वारा छात्रवृत्ति प्राप्त करके, वह अपनी अधूरी पढ़ाई के लिए लंदन चले गए। सन् 1923 में उन्हें डॉक्टर ऑफ सांइस (डी. एस.सी.) की उपाधि प्राप्त हुई। लंदन में बैरिस्टरी पास करके, वह भारत वापस लौट आए। फिर वह बम्बई हाईकोर्ट में वकालत करने लगे और बम्बई विधान-परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए।

डॉ. अम्बेडकर ने समाज-सुधार के अनेक कार्य किए। उनके प्रेरणा स्रोत कबीर, फूले और महात्मा बुद्ध थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शूद्र कौन थे?' को महात्मा फूले को समर्पित किया हैं। उन्होंने अछूतों, गरीबों, किसानों, स्त्रियों, मजदूरों सभी के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों को उठाया। भारतीय समाज में अछूतों की दीन-हीन स्थिति के वे खुद भोक्ता रहे थे इसलिए उन्होंने अन्याय और शोषण के विरुद्ध कई आंदोलन किए। उन्होंने अछूतों के उद्धार के लिए 1917 के आस-पास ही आंदोलन शुरू कर दिए थे। लेकिन 1927 से उनके आंदोलनों ने जोर पकड़ना शुरू किया। उनके प्रमुख आन्दोलनों में महाड़ सत्याग्रह (1927), कालाराम मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन (1929-30), लेबर पार्टी की स्थापना (1936), नागपुर सम्मेलन (1942), धर्म परिवर्तन आन्दोलन (1956), आदि महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने **बहिष्कृत भारत, मूक नायक** और **जनता** अखबार निकाले।

डॉ. अम्बेडकर जात-पात तोड़कर भारत में एक वर्गविहीन-वर्णविहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। उनका मानना था कि स्त्री चाहे किसी भी वर्ग या जाति की हो उसका समाज द्वारा शोषण होता ही है। कोई भी देश तभी तरक्की कर सकता है जब वहाँ की स्त्रियों और बच्चों की स्थिति अच्छी हो। उन्होंने लड़कों के साथ-साथ ही लड़कियों की शिक्षा की ओर भी समाज का ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने बाल-विवाह का जमकर विरोध किया। साथ ही हिंदू-कोड बिल जिसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिए गए थे, को पास करवाने के लिए मंत्रिमंडल से त्यागपत्र भी दिया। उनके प्रयास से ही संविधान में समानता के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया। उनके इन्हीं कार्यो के कारण उन्हें 'बाबासाहेब' कहकर भी सम्बोधित किया गया है। जब अनेक सुधारवादी आन्दोलनों के बाद भी जातिभेद समाप्त नहीं हुआ तो अम्बेडकर ने हारकर 14 अक्टूबर 1956 को एक विशाल जनसभा मे लाखों दलितों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। उसी वर्ष 6 दिसम्बर 1956 को उनका परिनिर्वाण हो गया।

डॉ. अम्बेडकर की परिनिर्वाण के बाद 2 मार्च, 1958 को बम्बई में पहला दलित साहित्य सम्मेलन हुआ। दलित लेखक कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा, एकांकी, नाटक आदि के माध्यम से अपने अनुभवों को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने लगे। अस्मिता और बाद में अस्मितादर्श नामक त्रैमासिक पत्रिका के निरंतर प्रकाशन ने दलित लेखकों को लेखन के लिए प्रेरित किया। मराठी दलितों द्वारा 9 जुलाई, 1972 को 'दलित पैंथर' की स्थापना और उसी वर्ष नामदेव ढसाल के काव्य संकलन 'गोल पीठा' के प्रकाशन ने दलित साहित्य को स्थापित किया। डॉ. अम्बेडकर का मानना था, कि विचार सीमाओं में आबद्ध नहीं रह सकते, एक बार प्रकाशित होने पर वे सभी दिशाओं में फैल जाते हैं। यह बात पूर्णत: दलित साहित्य पर लागू होती है। दलित साहित्य वर्तमान में भारत की लगभग सभी भाषाओं में रचा जा रहा है।

दलित साहित्य पर डॉ. अम्बेडकर का गहरा प्रभाव है। डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा ''मी कसा झालो'' (मैं ऐसे बना) से प्रेरित होकर दलित लेखकों ने आत्मकथा लिखनी आरंभ की। दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन यथार्थ रूप में प्रदर्शित हुआ है। जहाँ सामान्य आत्मकथाओं में व्यक्ति विशेष का चित्रण होता है, वहीं दलित आत्मकथाओं में पूरे समाज का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। दया पवार की 'बलूत' अछूत, शरणकुमार लिबांले की 'अक्करमाशी', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', श्यौराज सिंह 'बेचैन' की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया' आदि आत्मकथाओं में लेखकों ने अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान की हैं।

डॉ. अम्बेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक क्रांति में स्त्री को भी पुरुष की सहयोगी बनना चाहिए। वह स्त्रियों की शिक्षा को लेकर बहतु सजग थे। उन्होंने विभिन्न कार्यो द्वारा महिला सशक्तीकरण की नीवं डाली। उनका मानना था कि देश तब तक तरक्की नही ं कर सकता जब तक उसकी आधी आबादी स्त्रियों को समान अवसर ना मिले उनके प्रयासों का ही परिणाम है कि आज दलित साहित्य ने ही दलित महिला को जीने का आशय समझाया है। वर्तमान में कई दलित लेखिकाएं दलित साहित्य रच रही हैं, जैसे-रजत रानी 'मीनू', कौसल्या बैसंत्री, बेबी कांबले, सुशीला पवार, अनिता भारती, शशि निर्मला, नीरा परमार, पूनम तुषामड़ आदि। साथ ही यह डॉ. अम्बेडकर के संदेश को आम महिला तक पहुँचाने का कार्य भी कर रही हों स्वरूप रानी अपनी कविता में दलित स्त्री के दमन को निम्न प्रकार से चित्रित करती हैं-

> ''अरे हाँ....अपनी जिंदगी को मैंने जिया कब?
> घर में पुरुषाहंकार एक गाल पर थप्पड़
> मारता है तो
> गली में वर्ण आधिपत्य दूसरे गाल पर चोट करता है।''

वहीं नीलम कुमारी अपनी कविता

'उड़ान' में शिक्षा द्वारा स्वतंत्रता पाना चाहती हैं-

"सोचती हूँ
खोज लूँ
उन किताबों में अपने होने का अस्तित्व
बाकी तो जीवन में वास्तविक कुछ नहीं
केवल भावुक सम्बन्धों का घेरा है
जो रहता है, साथ हमेशा
माँ, पिता, भाई, पति और बच्चों के साथ
बस, मैं चाहती हूँ
इन सम्बन्धों की कूटनीति से बाहर
निकलना
उस चिड़िया के समान
जो अपनी उड़ान खुद उड़ना चाहती है
नीले, स्वच्छ आकाश को
जो छूना चाहती है।"

इसी प्रकार दलित कथा-साहित्य में भी डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव साफ दिखाई पड़ता है। दलित कथा-साहित्य में भी सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया गया है। इसके केन्द्र में परिवर्तन की चेतना है। जयप्रकाश कर्दम ने अपने उपन्यास 'छप्पर' में मुख्य रूप से दलित स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या को उठाया है। सत्यप्रकाश का उपन्यास 'जस तस भई सवेर' दलित जीवन की त्रासदी का सच्चा दस्तावेज है। वहीं मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्ति-पर्व' उपन्यास दलितों की स्वतन्त्रता और समानता पर आधारित है। प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगन्ध', कौसल्या बैसंत्री का 'दोहरा अभिशाप', रूपसिंह चन्देल का 'पत्थर टीला', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' आदि उपन्यास दलित साहित्य को विस्तार प्रदान करते हैं। साथ ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ', सूरजपाल चौहान की 'टिल्लू का पोता', श्यौराज सिंह 'बेचैन' का 'शोध-प्रबन्ध', दयानन्द बटोही की 'सुरंग' आदि कहानियों में भी अम्बेडकरवादी विचारधारा की झलक दिखाई देती है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि डॉ. अम्बेडकर दलित साहित्य के पथ-प्रदर्शक है। उन्होंने ही दलित स्त्री-पुरुष को मनोवैज्ञानिक मुक्ति प्रदान की है। दलित साहित्य अम्बेडकरवादी सोच पर आधारित है। इस कारण यह वर्तमान समाज-व्यवस्था को सिरे से खारिज करता है। दलित साहित्य दीन-हीन व्यक्तियों द्वारा बेशक लिखा गया है, लेकिन यह पूरे समाज को प्रेरित और प्रभावित करता है। डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव के कारण ही दलित साहित्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति को प्राथमिकता देता है। अतः दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर का सदा ऋणी रहेगा।

संदर्भ-सूची :-

1 सम्पादक-कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी।

2 ठाकुर डॉ. हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, संस्करण।

3 वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

4 ठाकुर डॉ. हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली।

5 कसबे रावसाहेब, अनुवादक-उषा बैरागकर आठले, आंबेडकर और मार्क्स, संवाद प्रकाशन मेरठ। ☐

(लेखिका अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली में शोधार्थी हैं)

अपने लेख हमें ई. मेल करें

सामाजिक न्याय संदेश में बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर पर शोधपरक गंभीर व विश्लेषणात्मक लेख, कविताएं, कहानियां, आदि रचनाएं और दलित-स्त्री-आदिवासी साहित्य व विमर्श पर सामग्री भेजें। अपने लेख, डाक द्वारा भेजें या ई. मले करें। ई. मले करने के लिए वॉकमैन चाणक्य (Walkman-chankya-905) फोंट का इस्तेमाल करते हुए अपने वर्ड ओपन फाईल को hilsayans@gmail.com अथवा editorsnsp@gmail.com पर भेजें। रचनाओं के मौलिक, अप्रसारित व अप्रकाशित होने के साथ ही लेख, कविता, कहानी आदि रचनाओं के बड़े होने पर उसे कम करने, विचारानुसार शुद्धिकरण कर उसमें जोड़ने व किसी बात की सही पुष्टि न होने पर उसे ठीक करने की सहमति का प्रमाण पत्र भी संलग्न करें।

-सम्पादक
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15, जनपथ नई दिल्ली-110001
टेलीफोन : 011-23320588, 23320589
मोबाइल : 07503210124

डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व का असर

■ प्रीता हरित

डॉ. अम्बेडकर एक ऐसे महान व्यक्ति हैं जिनके जीवन और संघर्ष ने व्यक्तिगत् रूप से मुझे प्रभावित किया है। जब से मैंने होश सम्भाला, स्वयं को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एक अतिविशिष्ट परिस्थिति में पाया। वह समय जब स्कूल की एक-एक सहपाठिनी स्वयं को ब्राह्मण या खत्री बताते हुए गौरवान्वित हुआ करती थी, मैं अपनी जन्मजात सामाजिक स्थिति से अनजान होते हुए भी उन सहपाठिनियों द्वारा हीन स्थिति में धकेल दी जाती थी। कारण, क्योंकि उनकी तरह मैं अपनी वाचाल वाणी से स्वयं को ब्राह्मण या खत्री घोषित नहीं कर पाती थी। स्पष्ट था, कि मुझे पता ही नहीं था कि मैं कानै हूँ? धर्म आरै जाति के अनुसार मैं किस श्रेणी में हूँ? सामाजिक स्तर पर मेरी क्या अहमियत है? मतलब साफ था कि मेरे परिवार में इस विषय पर हम बच्चों से कोई चर्चा नहीं हुआ करती थी। इसलिए मुझे पता नहीं था कि मैं जन्म से क्या हूँ, ब्राह्मण हूँ या खत्री। परंतु इतना तो मुझे लग ही गया था कि मैं इनमें से कोई भी नहीं हूँ, क्योंकि यदि मैं ब्राह्मण होती तो मुझे भी अपनी उन हम उम्र सहपाठिनियों की तरह अपनी जन्मजात अभिजात्यता के बारे में पहले से पता होता।

मैं भोली थी, मासूम थी, जन्म के आधार पर समाज में होने वाले भेदभाव से मेरा पहला-पहला वास्ता तब पड़ा था जब मैं महज आठ या नौ वर्ष की थी। उस छोटी उम्र में मैंने अपने पिता से एक जलता हुआ सवाल दागा कि पिताजी हम कौन हैं? सभी सहेलियाँ ब्राह्मण या क्षत्रिय हैं, और मुझे पता ही नहीं हैं कि हम इनमें से क्या हैं ? तब मेरे पिता ने उतने ही चौंकाने वाले स्वर में मुझसे कहा कि हम बौद्ध हैं। तब मेरा अगला विवश प्रश्न था कि हम ब्राह्मण, क्षत्रिय क्यों नहीं हैं? पिता के पास इसका उत्तर तो था, मगर मैं इतनी छोटी थी कि उस उत्तर को स्वीकार नहीं कर सकी। उस बाल मन में जन्म से कोई छोटा बड़ा भी हो सकता है या कोई ऊँचा-नीचा भी हो सकता है, इस बात का बोध नहीं हुआ था।

खैर, शीघ्र ही मेधावी बुद्धि होने के कारण मैं पढ़ने-लिखने लगी, और मेरे पिता ने मेरे बचपन के जलते सवाल के जवाब में डॉ. अम्बेडकर की जीवनी मुझे पढ़ने के लिए थमा दी। डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन से मुझे एकाएक अपनी जन्मस्थिति पर एक गर्व का अनुभव हुआ, और इस बात से कि मैं कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय नहीं, जन्म से दलित हूँ, मुझे लगा कि मेरे सामने चुनौतियों का एक पहाड़ खड़ा हुआ है। ऐसा पहाड़ जिस पर डॉ. अम्बेडकर बहुत पहले ही चढ़ चुके हैं और उन्होंने अकेले ही उन ऊँचाईयों पर पहुँचकर मेरे लिए और समाज के सभी दलित लोगों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

डॉ. अम्बेडकर का जीवन संघर्ष और सफलता का एक महान दस्तावेज है। डॉ अम्बेडकर ने अपनी योग्यता और कठिन परिश्रम से देश से छुआछूत के कलंक को मिटाने का जो प्रयास किया है वो देश के दलितों के ही हित में नहीं, समस्त देश की प्रगति में उल्लेखनीय है। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी बुद्धि क्षमता से यह सिद्ध कर दिया

कि हर व्यक्ति जन्म से समान है, जाति या जन्म से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता हैं। जाति व्यक्ति की बनाई हुई है, धर्म, जातिभेद, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, छुआछूत यह मानवी रचना के नहीं बल्कि मनुष्य के बनाए हुए बंधन हैं।

डॉ. अम्बेडकर की जीवनी ने मेरे बालमन को पूरी तरह से प्रभावित किया। उनकी योग्यता, उनकी जीवनी शक्ति, उनके कठोर परिश्रम करने की सामर्थ्यता ने मेरे भीतर भी वही चिन्ह उजागर करने शुरू कर दिए। उस छोटी उम्र में डॉ. अम्बेडकर के जीवन दर्शन ने मुझे समाज में अपनी हीन स्थिति का बोध कराया और साथ ही ये भी सिखाया कि मैं उस स्थिति के लिए जिम्मेदार नहीं हूँ परन्तु मैं उस स्थिति में बने रहने के लिए जिम्मेदार जरूर हूँ यदि मैंने डॉ. अम्बेडकर जैसे श्रेष्ठ पुरुष के बनाए हुए पद्चिन्हों पर न चलकर उनके द्वारा बनाए हुए सफलता के ऊँचे शिखर को न छुआ।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के अपने

जीवन संघर्ष से मुझे व्यक्तिगत् प्रेरणा मिली। डॉ. अम्बेडकर अछूत थे जिन्हें छूना तो दूर देखना और सुनना भी वर्जित था। उस तिरस्कार भरे कष्टपूर्ण जीवन में डॉ अम्बेडकर ने अपनी लगन और मेहनत से न सिर्फ उच्च शिक्षा प्राप्त की बल्कि अपनी और अपने जैसे अछूतों की सामाजिक दशा को सुधारने के प्रयास भी किए। उन प्रयासों के बड़े दूरगामी परिणाम हुए, जिनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं भारत के संविधान का निर्माण।

डॉ. अम्बेडकर ने कठिन प्रयासों से उच्च शिक्षा प्राप्त की। डॉ. अम्बेडकर में जन्मजात मेधा थी, अपनी तीव्र बुद्धि और दृढ़ निश्चय के कारण उन्होंने घोर कष्ट और निर्धनता को सहते हुए भी जब विदेश में शिक्षा प्राप्त की तो उस समय उन्होंने अपने आप को अछूत शब्द के अपमान और वंचना से दूर पाया। उस समय उन्होंने यह फैसला किया कि यदि व्यक्ति को जन्मजात प्रतिभा और योग्यता का सही विकास करना है तो उसे समान अवसर और व्यक्तित्व के उत्थान के लिए सही वातावरण का मिलना बहुत जरूरी है। और समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए सिर्फ लड़कों की ही नही लड़कियों की पढ़ाई भी उतनी ही जरूरी है। अपने बुद्धि, बल और अथक परिश्रम से उन्होंने राजनीति-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे कठिन विषयों में एम.ए. किया। उन्होंने 1915 में 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' पर शोध प्रबंध लिखा। 1916 में उन्होंने 'भारत में जातियां, उनका स्वरूप, उत्पत्ति तथा विकास' पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किया और भारत में जाति प्रथा की उत्पत्ति और उसके बुरे परिणामों को व्यक्त किया। 1916 में पी.एच.डी. के लिए कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उन्होंने 'दि नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया ए हिस्टोरिक एण्ड ऐनालिटिकल स्टडी' पर शोध किया। जो बाद में 'दि एवोल्यूशन ऑफ इम्पीरियल प्रोविन्शियल फाइनेंस इन इंडिया' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में डॉ. अम्बेडकर ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था की भरपूर आलोचना की। डॉ. अम्बेडकर ने जाति प्रथा की बुराईयों और खराबियों को 'मूक नायक' नामक अखबार के माध्यम से जनता के सामने रखा। फिर उन्होंने लंदन में 'ब्रिटिश भारत में साम्राज्यवादी वित्त का प्रांतीय विकेन्द्रीकरण' विषय पर शोध प्रबंध लिखा। उसके बाद उन्होंने 'रूपये की समस्या' नाम से शोध प्रबंध लिखा। लंदन विश्वविद्यालय में उनके शोध प्रबंध से भारत में ब्रिटिश वित्त व्यवस्था का स्वरूप स्पष्ट हो गया जिससे वहाँ बुरी तरह हलचल मच गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. अम्बेडकर ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और असाधारण प्रतिभा से इतना ज्ञानार्जन किया कि अमेरिका के कोलम्बिया और लंदन व जर्मनी में अपनी विशेष पहचान स्थापित की। अपनी इसी योग्यता के बल पर उन्होंने बाद में भारत में छुआछूत की समस्या का समाधान किया और भारतीय संविधान का निर्माण कर जातिप्रथा को खत्म ही नहीं किया बल्कि सबके लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्रतिष्ठापना की। डॉ. अम्बेडकर भलीभाँति जानते थे कि छुआछूत की समस्या का समाधान हिंदू समाज के पुनर्निर्माण से ही संभव हैं। जातिवाद और जातिप्रथा को खत्म करने के लिए संविधान के माध्यम से ही प्रयास संभव हैं, और यह उन्होंने करके दिखाया ।

आज जब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रशस्त किए मार्ग पर चलकर जीवन के एक सुरक्षित सोपान पर पहुँच चुकी हूँ तो फिर से घूमकर डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिए गए योगदान का अपने जीवन में मूल्यांकन करती हूँ, तब एक अबोध बच्ची के रूप में जो प्रेरणा उनसे मुझे मिली उससे मैं आज यहाँ तक पहुंची। और आज जब मैं जीवन के उस क्षेत्र में पहुँच चुकी हूँ कि उनकी प्रेरणा से आने वाली पीढ़ियों को अवगत करा सकूँ तो मुझे मन में एक अनोखा उत्साह महसूस हो रहा है। यही नहीं, समाज के प्रति मेरा ध्येय अभी पूरा नहीं हुआ हैं। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि आज के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रदत्त संविधान का समाज का स्वरूप सुधारने में योगदान हो, इसमें मुझ जैसे लोगों की अहम् भूमिका है जिन्होंने अपने बचपन में डॉ. अम्बेडकर के जीवन और कार्यो से प्रेरणा ली थी।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के परिप्रेक्ष्य में दलितों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के विरोधाभास को इन शब्दों में व्यक्त किया। उन्होंने कहा, "हम 26 जनवरी 1950 को एक विरोधाभास पूर्ण जीवन में प्रवेश करेंगे। राजनीति में हमें समानता प्राप्त होगी और सामाजिक व आर्थिक जीवन में असमानता। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति एक मत' और 'एक मत एक मूल्य' के तत्व को स्वीकार करेंगे और अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में 'हम एक व्यक्ति एक मूल्य' के तत्व को अपने सामाजिक, आर्थिक ढांचे के तर्क के आधार पर नकारते रहेंगे। हम कब तक इस विरोधाभास पूर्ण जीवन में रहेंगे ? अगर हमने इसे ज्यादा वक्त तक नकारा तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डालेंगे। हमें जल्द से जल्द इन विरोधी तत्वों को हटाना है, वरना जो इस असमानता को भोग रहे हैं, वे इस राजनीतिक लोकतंत्र को उखाड़ फेंक देंगे, जिसका इस सभा ने इतनी मेहनत से निर्माण किया है।"

डॉ. अम्बेडकर के जीवन चरित्र ने मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। डॉ. अम्बेडकर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने अपने जीवन में अछूत पैदा होने के कारण हर तरह की प्रताड़ना और अपमान सहा लेकिन फिर भी अपनी मेहनत और अदम्य उत्साह के बल पर उन्होने इंग्लैंड, अमेरिका और जर्मनी में उच्च शिक्षा अर्जित की, और अपनी प्रखर बुद्धि और मेधा का परिचय देश-विदेश में दिया। उन्होने भारत में जाति का उद्गम, देश का भाषायी आधार पर प्रदेशों का विभाजन, केन्द्र का अल्पसंख्यक समुदायों से सम्बन्ध, अंग्रेज

भारतीय रूपये का अंग्रेजी पाउंड से सम्बन्ध, भारत की छोटी खेती बाड़ी आदि अनेक विषयों पर अपने ज्ञान का सबूत दिया, पर उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान तो भारत गणराज्य का संविधान है। डॉ. अम्बेडकर एक महाज्ञानी थे, उनके जीवन से प्रेरणा लेकर मैंने और मुझ जैसे अनेक दलितों ने अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में सुधार किया है। डॉ. अम्बेडकर के पास तीक्ष्ण बुद्धि ही नहीं तीव्र इच्छा शक्ति भी थी। उन्होंने भारत में जाति प्रथा और छुआछूत के भेदभाव को ही दूर नहीं किया बल्कि वर्णाश्रम व्यवस्था को भी समाप्त किया। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'जाति का सम्पूर्ण विनाश' में कहा है, ''मेरे विचार से इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जब तक हम अपना सामाजिक क्रम नहीं बदलेंगे तब तक हम थोड़ी सी उन्नति के लिए भी समाज में जागरूकता नहीं ला सकते हैं। जाति के आधार पर हम न तो एक देश का निर्माण कर सकते हैं और न ही एक नीति बना सकते हैं। जाति के आधार पर बनाया गया कुछ भी चूर हो जाएगा और कभी पूरा नहीं होगा।'' वे जानते थे कि समाज का निर्माण जाति के आधार पर नहीं वरन् तर्क के आधार पर होना चाहिए।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर संविधान की प्रारूप समिति के सभापति थे। डॉ. अम्बेडकर ने 25 नवम्बर 1949 को संविधान सभा में बोलते हुए कहा था, ''मैं महसूस करता हूँ कि संविधान चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को चलाने का काम सौंपा जाएगा, खराब निकले तो निश्चित रूप से संविधान भी खराब सिद्ध होगा। दूसरी ओर, संविधान चाहे कितना भी खराब क्यों न हो, यदि उसे चलाने वाले अच्छे लोग हुए तो संविधान अच्छा सिद्ध होगा।'' इस प्रकार संविधान सभा एक अच्छा संविधान प्रतिपादित करने में सफल हुई।

हम डॉ. अम्बेडकर द्वारा बनाए गए संविधान में अपनी ही छवि देखते हैं। ''हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

संविधान की आत्मा में हम भारत के लोगों के बारे में लिखा है और हम भारत के दलित वही लोग हैं जिनके लिए संविधान की आत्मा में यह संविधान अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया है। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों की सामाजिक स्थिति को सुधारने के प्रयास में भारत के सभी नागरिकों के लिए समतामूलक समाज की अवधारणा की। समता न सिर्फ राजनैतिक स्तर पर बल्कि आर्थिक व सामाजिक स्तर पर भी हो। डॉ. अम्बेडकर ने न सिर्फ राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना की बल्कि आर्थिक व सामाजिक लोकतंत्र की भी स्थापना की। न्याय, स्वतन्त्रता, समता, व्यक्ति की गरिमा, बंधुता आदि सिर्फ और सिर्फ तभी संभव हैं जब समाज जातिगत भेदभाव या यूँ कहिए कि जब समाज जाति विहीन होगा। समाज में सिर्फ राजनैतिक न्याय ही नहीं बल्कि सामाजिक व आर्थिक न्याय भी उतना ही महत्वपूर्ण होगा जितना कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समता।

अब आज के संदर्भ में यदि डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष की ओर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि उन्होंने ऐसे समतामूलक समाज की अवधारणा की जिसमें जन्म के आधार पर कोई विसंगति न हो। उन्होंने सबके लिए समान अवसर, समान शिक्षा, समान रोजगार और समान आर्थिक नीतियों का प्रतिपादन किया जिससे दलित समाज में क्रांति आ गई। फलस्वरूप पढ़े-लिखे और अपने सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक दलितों की एक फौज तैयार हो गई। मैं भी उनमें से एक हूँ। और मैं इसे अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझती हूँ कि डॉ. अम्बेडकर से प्रेरणा लेकर जो उन्नति मैंने व्यक्तिगत् स्तर पर की वहीं मैं अपने दलित भाईयों और बहनों की भी करूँ।

मैं नैतिक रूप से बाध्य हूँ कि देश में व्याप्त जातिगत भेद को जड़ से मिटा दूँ। दलितों को तो जागरूक करूँ ही उन व्यवस्थाग्रस्त उच्च जाति के बंधन में भ्रष्ट समाज के वर्गों को भी यह अच्छी तरह महसूस करवा दूँ कि जाति से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता, जन्म से कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता, ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कुछ नहीं होता। ब्राह्मण बनकर जन्म लेना अब किसी भी हाल में सौभाग्यपूर्ण नहीं है, उसी तरह जैसे शूद्र बनकर जन्म लेना दुर्भाग्यपूर्ण नहीं, बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि जाति बंधन और व्यवस्था इंसान ने बनाई हैं और इसके कोई मायने नहीं। हाँ कुछ लोगों ने बड़े घृणित तरीके से हजारों वर्ष तक बाकी लोगों का दमन व दलन किया और इसके लिए जन्म की श्रेष्ठता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होता। सबके पास समान क्षमता व शक्ति होती है। डॉ. अम्बेडकर ने जन्म व जाति के आधार पर दुर्भाग्य व अवमानना के शिकार समाज को इस अभिशाप से मुक्ति दिलाई और पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी समाज का निर्माण किया। आज मैं अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी समझती हूँ कि डॉ. अम्बेडकर के दिखाये मार्ग पर चलकर न सिर्फ दलितों का उद्धार करूँ बल्कि समस्त देश के विकास में सहायक बनूँ। □

(लेखिका भारतीय राजस्व सेवा में वरिष्ठ अधिकारी है।)

डॉ. अम्बेडकर और फूले की शिक्षा का असर

■ **रजनीश कुमार अम्बेडकर**

भारत वर्ष के मूल निवासी जब भारत वर्ष का इतिहास पढ़ते हैं और इतिहास में देखते हैं कि यहाँ के निवासियों को कैसे गुलाम बनाने के लिए तमाम सारे हथकंडों को अपनाया गया। इसलिए शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही मनुष्य को पता चलता है कि वो गुलाम हैं या स्वतंत्र। भारत 700 साल तक मुगलों का गुलाम रहा और उन्होंने आसानी से राज किया क्योंकि उन्होंने किसी भारतवासी को शिक्षा नहीं दी। कुछ ब्राह्मण शिक्षित थे, मगर वे मुगलों का शासन चलाने में मदद करते थे। उन्होंने कभी भी मूलनिवासियों के पास शिक्षा को नहीं जाने दिया। अधिकांश देश की जनता अशिक्षित होने के कारण देश को गुलामी से नहीं बचा सकी। इसलिए शिक्षा के बारे में अंग्रेजों ने कहा था कि अगर किसी देश को अधिक समय तक गुलाम बनाकर रखना है, तो वहाँ के नागरिकों को शिक्षा मत दो। मगर ऐसा करना पूरी मानवता के खिलाफ अन्याय होगा। अत: अंग्रेजों ने तय किया कि हम भारत के नागरिकों को शिक्षा देंगे। लेकिन शिक्षा हमेशा वाद-विवाद में फंसी रही क्योंकि ब्राह्मण नहीं चाहते थे कि शिक्षा सभी मूलनिवासियों को दी जाये क्योंकि ब्राह्मणों को मालूम था कि अगर शिक्षा यहाँ के मूलनिवासियों को दी गई तो मूल निवासी हमारे विरूद्ध संघर्ष शुरू कर देंगे। अंत में अंग्रेजों को भारत इसलिए छोड़ कर जाना पड़ा क्योंकि उन्होंने यहाँ के मूलनिवासियों को शिक्षा देने का निर्णय स्वीकारा था। भारत में सबके लिए शिक्षाकी शुरुआत अंग्रेजों के समय शुरू हुई।

शिक्षा के क्षेत्र में फूले और अम्बेडकर का योगदान

आधुनिक भारत में शिक्षा की शुरुआत क्रांतिज्योति माता सावित्रीबाई फूले और महात्मा ज्योतिबा फूले ने 1848 में अछूत-शूद्र समाज के लिए पूना में स्कूल खोलकर की। जो स्वयं भी इस देश के मूल निवासी थे। उन्होंने अपने देश के मूलनिवासियों से शिक्षा के बारे में कहा, कि "अगर नारी को शिक्षित कर दिया जाए, तो सारा समाज शिक्षित हो जायेगा।" इसी संदर्भ में उन्होंने आगे कहा कि

"विद्या बिन मति गई,
मति बिन नीति गई,
नीति बिन गति गई,
गति बिन धन गया,
धन बिन शूद्र पतित हुए,
इतना घोर अनर्थ केवल अविद्या के कारण ही हुआ"

यानि कि इस देश के मूलनिवासियों की गुलामी का मुख्य कारण अशिक्षा थी।

शिक्षा के बारे में तथागत गौतम बुद्ध कहते है कि **"अत्त दीपो भव अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनों।"**

शिक्षा के बारे में गुरु नानक कहते हैं कि **"जहाँ शिक्षा का प्रकाश होता है वहाँ अंधकार अपने आप भाग जाता है।"**

चार्ल्स ग्रांट जब जूनियर एकाउंटेंट की हैसियत से भारत आए। ग्रांट की दलील थी कि भारत के बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक अंधकार का उपचार शिक्षा की ज्योति है। शिक्षा के बारे में बाबासाहेब डॉ. बीआर. अम्बेडकर कहते हैं, **"शिक्षा वो शेरनी का दूध है जिसे पीकर मनुष्य कहीं भी दहाड़ सकता है।"**

वास्तव में शिक्षा से बढ़कर कोई देवी-देवता, ईश्वर या भगवान नहीं। अगर संसार में कोई अस्तित्व रखता है, तो उसका

अनुभव शिक्षा ही कराती है। जो शिक्षित नहीं उनकी तुलना पशुओं से की जाती है।

शिक्षा के कारण ही आज देश के मूलनिवासियों को पता चलने लगा है कि देश के मूलनिवासियों के राजाओं, महाराजाओं को किस प्रकार से धराशाही किया गया, किस प्रकार से उनकी संपत्ति लूटी गई तथा किस प्रकार से उन्हें गुलाम बनाया गया।

जब-जब इस वर्ग की समस्या हल करने की बात आती है, काम कम किया जाता है, और दिखावा ज्यादा किया जाता है। स्थिति आज भी वैसे ही है, जैसी कि पिछले सैकड़ों वर्षो से चली आ रही है। कुछ बदलाव आया है। वह भी शहरी आबादी क्षेत्रों में है, जिसका मूल कारण डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान में दलितों व वंचितों को दिये गये अधिकार हैं। गाँवों में तो आज भी हालात वही हैं। बदलाव केवल कागजी दिखावा है। आज भी ऐसी स्थिति

है कि शोषण तो होता है लेकिन शोषण का तरीका बदल गया है। हाल ही में पिछले दिनों एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 11 की किताब जिसमें डॉ. बी. आर. अम्बेडकर पर बनाया गया कार्टून, जिसमें जवाहर लाल नेहरू द्वारा चाबुक मारते हुए दिखाया गया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि जिस किसी ने भी यह कार्टून बनाया है। उसकी डॉ. अम्बेडकर के प्रति सम्मान की भावना बिल्कुल नहीं रही होगी। डॉ. अम्बेडकर पर कार्टून बनाने वाले के खिलाफ कोई मुकदमा दर्ज नहीं किया गया, लेकिन जब दलित पत्रकार सत्येन्द्र मुरली ने गांधी पर कार्टून बनाया तो उसके खिलाफ तुरन्त कार्यवाही करते हुए जयपुर पुलिस ने एफ.आई. आर. दर्ज कर ली। यह अन्याय नहीं तो क्या है...?

अम्बेडकर ने ऐसा क्यों किया....?

13 अक्टूबर 1935 को येवला जिले में सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करनी पड़ी "मैंने हिंदू धर्म में जन्म अवश्य लिया है। यह मेरे वश में नहीं था, किन्तु अब मैं हिंदू धर्म में मरूँगा नहीं, यह मेरे वश में है।" डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्ति को हिंदू धर्म त्याग कर बौद्ध धम्म क्यों स्वीकार करना पड़ा...? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका एक ही उत्तर है, वह है हिंदू धर्म में निहित व्यवस्थाएँ, जो न्याय और समता पर आधारित नहीं होकर असमानता पर आधारित हैं। हिंदू धर्म की ये आत्मघाती व्यवस्था ही भारतीय समाज को जड़ बनाए हुए है। बाबासाहेब ने देखा कि कट्टर हिंदू धर्मावलम्बी इन व्यवस्थाओं को बदलने के लिए तैयार नहीं है, तो उन्होंने इस छेद वाली नाव को छोड़कर बेहतर आश्रय प्राप्त करना उचित समझा।

बाबासाहेब ने 1935 में हिंदू धर्म छोड़ने की इस घोषणा के 21 वर्ष बाद 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में अपने पाँच लाख अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा क्यों ली..? क्योंकि सम्राट अशोक ने युद्ध (शस्त्र) द्वारा राज्य-विजय का मार्ग छोड़कर धम्म द्वारा विजय का संकल्प लिया था। इसलिए अशोक द्वारा बौद्ध धम्म स्वीकार करने की तिथि को 'धम्म-विजय दिवस' कहा जाता है। उस दिन हिंदी तिथि के अनुसार आश्विन शुक्ल-पक्ष दशमी पड़ता था, इसलिए इसे 'अशोक विजय दशमी' भी कहा जाता है। अशोक के बौद्ध-धम्म स्वीकार करने की तिथि आश्विन शुक्ल-पक्ष

जातिवादी में निहित व्यवस्थाएँ, जो न्याय और समता पर आधारित होकर असमानता पर आधारित हैं। जातिवाद की ये आत्मघाती व्यवस्था ही भारतीय समाज को जड़ बनाए हुए है। बाबासाहेब ने देखा कि कट्टर जातिवादी धर्मावलम्बी इन व्यवस्थाओं को बदलने के लिए तैयार नहीं है, तो उन्होंने इस छेद वाली नाव को छोड़कर बेहतर आश्रय प्राप्त करना उचित समझा।

दशमी का दिन था। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि अशोक द्वारा बौद्ध-धम्म स्वीकार करने के 2200 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में बाबासाहेब ने 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में धम्म-परिवर्तन किया था और उस दिन भी आश्विन शुक्ल-पक्ष दशमी था। अशोक विजय दशमी प्रत्येक वर्ष बड़े ही धूमधाम से मनाए जाने की प्रथा उसी समय से चल पड़ी है। स्वयं अशोक बौद्ध जुलूस निकालते और उसमें भाग लेते थे। 21 वर्षों के लम्बे अन्तराल में क्या बाबासाहेब अम्बेडकर जैसे महान् चिन्तक, विचारक, सामाजिक परिवर्तक चुप रहे होंगे....? नहीं, वे चुप नहीं रहे। वे बराबर इस अन्यायपरक सामाजिक व्यवस्था को बदलने की सोचते रहे। और पूरी दुनिया के सभी धर्मों का उन्होंने अध्ययन किया क्योंकि धर्म के बारे में उनका कहना था कि धर्म किसी भी व्यक्ति का निजी मामला है। लेकिन सदियों से धर्म व्यक्तियों, समुदायों, जातियों और वर्गों के स्वार्थों का आधार बनता है। इसलिए उनका मानना था कि धर्म को समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का आधार बनना चाहिए। धर्म ऐसा होना चाहिए जो समाज को मानवीय और गरिमामय बनाए, जो समाज के विभिन्न घटकों को जोड़े, तोड़े नहीं। केवल इसी मायने में कोई धर्म कल्याणकारी हो सकता है। इस दृष्टि से उन्होंने हिंदू धर्म का विश्लेषण किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि हिंदू धर्म से मुक्ति पाए बिना भारतीय समाज से जात-पात को खत्म नहीं किया जा सकता है, क्योंकि हिंदू धर्म अपनी बुनियादी प्रकृति में ही असमानता और शोषण को बढ़ावा देने वाला है। इसलिए ऐसे धर्म की खोज में लगे रहे जो सिद्धांत और व्यवहार दोनों रूपों में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को बढ़ावा देने वाला हो और अपने सम्पूर्ण रूप में मानवीय हो। अंत में ये सारे गुण 'बुद्ध धम्म' में पाये। यह बड़े ही गर्व की बात है कि ऐसा धर्म जिसका उदय भारत में ही हुआ हो..!

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर द्वारा इतने विशाल जनसमूह के साथ किया गया यह धर्मान्तरण महज एक धर्मान्तरण नहीं था यह इस देश में सामाजिक क्रान्ति की शुरुआत थी, जिसका सपना बाबासाहेब ने देखा था। एक वर्ण विहीन, जाति विहीन समाज का सपना, जो समानता, स्वतंत्रता और बंधुता पर आधारित था। बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर धर्म को व्यक्तिगत सरोकार नहीं मानकर सामाजिक सरोकार मानते हैं। वे धर्म की आवश्यकता को भी स्वीकार करते हैं। ऐसा नहीं होता तो वे धर्मान्तरण नहीं करते, केवल हिंदू धर्म का त्याग भर करते, बौद्ध-धम्म को अंगीकार नहीं करते और न ही इतना विशाल आयोजन करते।

उस ऐतिहासिक घटना के विशाल आयोजन की मात्र एक झलक प्रस्तुत है। दशहरा का दिन था। बहुजन समाज के लाखों स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध नागपुर की दीक्षा-भूमि की ओर जन-सैलाब की तरह बढ़े जा रहे थे। इनके लिए बाबासाहेब किसी साक्षात् भगवान से कम नहीं थे। बाबासाहेब के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। बाबासाहेब जैसे महापुरुष ने ही उनके हजारों वर्षों से नकारे जाते रहे मानव अधिकारों को बहाल करने के लिए लम्बा संघर्ष करके उसमें सफलता प्राप्त की थी। दीक्षा-भूमि पर लगभग पाँच लाख लोगों का जन-सैलाब उमड़ा था। वे बाबासाहेब का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे। कुछ ही क्षणों बाद बाबासाहेब ने श्वेत रेशमी धोती और श्वेत कोट में पत्नी सविता के साथ दीक्षा-भूमि में प्रवेश किया और मंच पर पहुँच गये कुशीनारा के भिक्षु चन्द्रमणी द्वारा उन्हें दीक्षा प्रदान की गई। इस दीक्षा ग्रहण के बाद अपने द्वारा तैयार की गई 22 प्रतिज्ञाओं को बाबासाहेब ने उपस्थित विशाल जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए पढ़ा।

अपने सम्बोधन के पश्चात् जब बाबासाहेब ने उस विशाल जन समुदाय का आह्वान किया कि जो बौद्ध-धम्म स्वीकार करना चाहते हैं, वे खड़े हो जाएँ तो पूरा का पूरा जन-समुदाय खड़ा हो गया। इस प्रकार यह मात्र 'धम्म-परिवतर्न ' की घटना नहीं होकर एक ऐतिहासिक घटना बन गई। यह सामाजिक क्रान्ति का अन्यायपरक, सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन का उद्घोष था।

इससे प्रमाणित होता है कि बाबासाहेब अम्बेडकर धर्म को सामाजिक विरासत मानते हैं तथा उसकी आवश्यकता को स्वीकारते हैं। बाबासाहेब ने कहा था, "मनुष्य को जीवित रहने के लिए केवल भोजन की आवश्यकता ही नहीं होती। उसके पास मस्तिष्क भी होता है जिसके लिए विचारों का खुराक आवश्यक है।

"मनुष्य को जीवित रहने के लिए केवल भोजन की आवश्यकता ही नहीं होती। उसके पास मस्तिष्क भी होता है जिसके लिए विचारों का खुराक आवश्यक है। उनके अनुसार मनुष्य की इस मानसिक भूख को मिटाने के लिए धर्म महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: धर्म को नैतिकता पर आधारित सामाजिक मूल्यों के आधार पर जाँचा-परखा जाना चाहिए।"

उनके अनुसार मनुष्य की इस मानसिक भूख को मिटाने के लिए धर्म महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत: धर्म को नैतिकता पर आधारित सामाजिक मूल्यों के आधार पर जाँचा-परखा जाना चाहिए।"

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर जैसे विद्वान, न्यायविद और समाज सुधारक द्वारा इस प्रकार हिंदू-धर्म का परित्याग करना इस धर्म की घोर विसंगतियों और सामाजिक पाखण्ड की एक तीव्र प्रतिक्रिया थी। जिस महापुरुष में भारत का संविधान रचने की सामर्थ्य हो, उसे मात्र इसी कारण एक निरक्षर भट्टाचार्य एवं संस्कारविहीन ब्राह्मण से नीच माना जाता रहे कि वह एक महार के घर में पैदा हुआ है। इससे बड़ा सामाजिक अन्याय और क्या होगा। इस अन्याय का प्रतिकार बाबासाहेब ने हिंदू धर्म का त्याग कर दिया।

बाबासाहेब हिंदू धर्म के अन्याय और भेदभाव पर आधारित नियमों के प्रति आस्थावान नहीं थे। वे सच्चे धर्म के रूप में उसे सिद्धान्तों पर आधारित धर्म बनाना चाहते थे इसके लिए उन्होंने पाँच अनिवार्यताएँ बनाई थी। 1- हिंदू धर्म के लिए एक मानक शास्त्र हो, 2- पुजारियों की नियुक्तियाँ वंश के आधार पर नहीं होकर खुली परीक्षा के माध्यम से हों, 3- पुजारी के लिए राज्य की सनद आवश्यक हो, 4- कानूनन पुजारियों की संख्या निर्धारित हो, 5- पुजारियों के चरित्र, विश्वास और पूजा का सरकार पर्यवेक्षण करे।

14 अक्टूबर 1956 को वह ऐतिहासिक क्षण था जब बाबासाहेब ने दीक्षा लेकर अपने करीबी अनुयायियों के लिए मानवतावादी बौद्ध-धम्म का मार्ग प्रशस्त किया। बाबासाहेब ने सब धर्मों को बहुत अच्छी तरह जाँच परख करके ही भारत भूमि पर उपजे अपने ही बौद्ध-धम्म की दीक्षा ली और भारतीय धर्म-निरपेक्ष संविधान का पूरी तरह से पालन किया। उनके द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना ही अपने आप में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' और प्रज्ञा-शील-करुणा पर आधारित सुदृढ़ सोपान है।

आज हम अपने समाज के उत्थान के लिए बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। क्या हम सब आपस में एक मत हैं...? मुझे नहीं लगता है ऐसा है।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि हर बच्चे को एक समान, अनिवार्य और मुफ्त प्रारंभिक शिक्षा मिलनी चाहिए,

चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या वर्ग का क्यों न हो...? उनका मानना था कि शिक्षा ही वो एक मात्र ताकत है जो सभी बेड़ियों को काट सकती है। उन्हें शिक्षा पर इतना विश्वास था कि उन्होंने अपने द्वारा बनाये गये नारे- 'शिक्षित बनो, संगठित रहो संघर्ष करो' में शिक्षा को ही प्रथम स्थान पर रखा।

बाबासाहेब ने दलित वर्ग के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण दिए जाने की वकालत की थी ताकि भारतीय समाज में अन्य वर्गों की तरह उन्हें भी प्रगति के बराबर मौके मिल सकें। अगर शिक्षा, रोजगार और आवास को मौलिक अधिकार बना दिया जाता तो अम्बेडकर को आरक्षण की वकालत करने की शायद जरुरत ही न पड़ती।

बाबासाहेब ने अपने गुरु ज्योतिबा फूले की स्त्रियों के सन्दर्भ में कही गई बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि स्त्रियों की वस्तुगत स्थिति और उनके शोषण के आधारों को इस तरह से समझा जिस तरह से किसी ने नहीं समझा था। उन्होंने माना कि इस देश की स्त्रियों की ऐसी दशा का मूल कारण मनुवादी समाज व्यवस्था को दी माना, जो इन्हें ज्ञान और संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं देती। इसलिए बाबासाहेब ने महिलाओं के उत्थान के लिए अपने अथक प्रयास से 'हिंदू कोड बिल' बनाया। लेकिन खुद कांग्रेस सरकार इसको पारित नहीं होने दिया, नहीं तो आज स्त्रियों की स्थिति और भी बेहतर होती। ये अलग बात है आज स्त्रियों की मुक्ति या सशक्तिकरण के लिए तमाम सारे लोग दम्भ भरते है।

इसलिए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए कहा था, **"मैं किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूँ कि उस समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है।"**

इसलिए मैं सदियों से दबाये एवं पिछाड़े गये समाज के उन सभी नौजवानों से आह्वान करना चाहता हूँ कि हमें अम्बेडकर और फूले द्वारा दी गई शिक्षा और तर्कों के आधार पर आगे बढ़ना है। तभी भारत एक महान राष्ट्र बन सकेगा, जब हम इतिहास के सच को हमारे मिथकों और हमारे आदर्शों का सूक्ष्मता से परीक्षण करेंगे। जब हम सच को गले लगाएंगे, जब हम पूरे मन से यह स्वीकार करेंगे कि हमारे देश में बहुजन लोग अब बहुत शोषित हो चुका है, उन्हें अब तो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक भागीदारी में समान मान-सम्मान, हक और अधिकार मिलना चाहिए, जो अब तक किताबों में पढ़ी हुई केवल सुन्दर पंक्तियां ही हैं। □

(लेखक बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर दलित एवं जनजाति अध्ययन केन्द्र म.ग्रा.अ.हिं.वि.वि. वर्धा में शोधछात्र हैं)

''चाहे जिधर भी देखें, जाति का भूत आपके विकास के रास्ते में रोड़ा बनकर आएगा। आप जब तक उस जातिवाद के भूत को समाप्त नहीं कर देते तब तक न तो आप राजनीति में सुधार ला सकते हैं और न ही सामाजिक व आर्थिक विकास को गति दे सकते हैं।''

–डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

11 अप्रैल, ज्योतिबा फूले जयंती पर विशेष

भारतीय समाज के क्रान्ति सूर्य : ज्योतिबा फूले

■ डॉ. जयप्रकाश कर्दम

बहुत पहले किसी विद्वान का यह कथन पढ़ा था कि 'अज्ञानता के अंधकार में जीने वाला मनुष्य कभी अपने जीवन के लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता।' यह भी पढ़ा था कि 'अनपढ़ आदमी को निरा बैल समझो। उसे चाहे जैसे हाँक लो।' ये दोनों बातें भारत में दलितों के संबंध में शत्-प्रतिशत् खरी उतरती हैं। सदियों से दलित लोग अशिक्षा के अंधकार में जीते आए हैं। इस अज्ञानता के कारण ही वे अपनी विवेक बुद्धि का कभी इस्तेमाल नहीं कर सके। दलितों (तथाकथित शूद्र-अतिशूद्र) को इस स्थिति में जबरन धकेलकर उन पर अपनी मनमानी लादने वाले तथाकथित उच्च वर्णीय लोगों ने दलितों को विवेक-शून्य बनाए रखने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ी। दलितों को सदा-सर्वदा के लिए अपना मानसिक और शारीरिक गुलाम बनाए रखने के लिए उन्होंने बहुत से ऐसे किस्से-कहानियां और आख्यान तैयार किए जो दलितों पर उनकी श्रेष्ठता को न केवल आधार देते थे अपितु उसे पुष्ट भी करते थे। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद और पुराण ग्रंथ इसी सोच और मानसिकता की उत्पत्ति हैं। ये सब ग्रंथ इसी तरह की तर्कहीन, बेबुनियाद और पाखण्डपूर्ण बातों के पुलिंदे हैं। चार्वाक ने वेदों को 'धूर्तों का प्रलाप' यूं ही नहीं कहा था। उसकी तर्कबुद्धि ने इनमें निहित धूर्तता और पाखण्डों को, और उन पाखण्डों के पीछे छिपे स्वार्थ को भली-भांति पकड़ लिया था। चार्वाक का मुद्दा दार्शनिक मुद्दा था। इसे सामाजिक स्तर पर समझने और समझाने का सफल प्रयास महात्मा ज्योतिबा फूले ने किया।

देश में बहुत से समाज सुधारक हुए हैं। संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो इतने समाज सुधारक शायद ही किसी अन्य देश में हुए हों जितने भारत में हुए हैं। इस दृष्टि से भारत को समाज सुधारकों की भूमि कहा जा सकता है। किन्तु इतने समाज सुधारकों के बावजूद समाज का क्या और कितना सुधार हुआ है, यह विचार का विषय है। सुधार की आवश्यकता वहाँ होती है जहां समाज में विकृतियाँ, विसंगतियाँ और विकार होते हैं। जहां चीजें ठीक नहीं होती, गड़बड़ होती हैं। भारत में बड़ी संख्या में समाज सुधारकों का होना इस बात का द्योतक है कि भारतीय समाज विकृत, विसंगतिपूर्ण और विकृतियों से भरा समाज है। धर्म, संप्रदायों में तो प्रायः दुनिया के प्रत्येक राष्ट्र के समाज में विभाजन पाया जाता है। किन्तु, भारतीय समाज धर्म और संप्रदाय के अलावा वर्ण, जाति और उपजातियों में भी विभक्त है। यह विभाजन समाज में व्यक्तियों के बीच श्रेष्ठता-हीनता, ऊंच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य, वर्चस्व-वंचना और सम्मान-अपमान का आधार है। उच्च कही या मानी जाने वाली जातियां सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित, आर्थिक रूप से संपन्न तथा राजनीतिक रूप से वर्चस्वशाली हैं, जबकि निम्न जातियाँ सामाजिक रूप से उपेक्षित और तिरस्कृत, आर्थिक रूप से अभावग्रस्त, और राजनीतिक रूप से शक्तिहीन हैं। अस्पृश्यता के कारण वे अनेक प्रकार के निषेध और वर्जनाओं की शिकार हैं। संक्षेप में देश की दलित और बहुत सी पिछड़ी जातियों के अधिकांश लोग मानवीय अधिकारों से वंचित हैं। समाज सुधार का असली कार्य यही था कि समाज के इन उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, उत्पीड़ित और शोषित लोगों को मानवीय अधिकार दिलाने हेतु प्रयास किए जाते। समाज सुधार का अर्थ यथार्थ में केवल सवर्ण हिंदू समाज की बेहतरी माना गया। इसलिए हिंदू समाज की प्रगति में जो सामाजिक विकृतियाँ या विसंगतियाँ देखी, समझी या मानी गई उन विकृतियों अथवा विसंगतियों को दूर करने पर ही प्रायः सभी समाज सुधारकों का बल रहा। इसलिए भारत के तथाकथित समाज सुधारवाद को सवर्ण हिंदू समाज

कल्याणवाद कहना अधिक उपयुक्त है।

यहाँ उल्लेखनीय बात यह भी है कि सवर्ण हिंदू जातियों में जन्मे और सवर्ण हिंदू समाज के कल्याण के निमित्त कार्य करने वाले व्यक्तियों को समाज सुधारक के रूप में प्रचारित और सम्मानित किया गया, जबकि वर्ण-जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता जैसी अत्यंत अमानवीय परंपरा का प्रतीकार करने वाले कबीर की वाणी का उलटबांसी या रहस्य कहकर मजाक उड़ाया गया। कबीर को इस तरह बदनाम किया गया कि दुनियाँ भर की तमाम् अशोभनीय बातों को कबीर के साथ जोड़कर सुनाया जाता है । बड़े मजे से उसमें रस और मजा लिया जाता है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' कहकर उसके आगे कुछ भी जोड़कर कहने की एक परंपरा सी समाज में बना गई है। होली के अवसर पर गाए जाने वाले कबीरे इसका सबसे बड़ा उदाहरण है, जिनमें कबीर का नाम जोड़कर बहुत भद्दी-भद्दी गालियां तक दी जाती है। समाज की रूढ़ परम्पराओं, अंधविश्वासों, धार्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक भेदभाव, उपेक्षा और शोषण का प्रतिकार कर समाज के तिरस्कृत, वंचित, उपेक्षित वर्गों और जातियों में समानता, सम्मान और स्वाभिमान चेतना का संचार करने वाले कबीर की वाणी का यह उपहास उनका अपमान है। यही हाल संत रविदास का हुआ। उनको भी ईश्वर भक्त के रूप में ही प्रचारित किया गया। पाठ्यक्रमों में भी उनकी इसी प्रकार की रचनाओं को शामिल कर विद्यार्थियों को पढ़ाया गया है। वर्ण-जाति-व्यवस्था-जनित सामाजिक-आर्थिक असमानता, शोषण, अस्पृश्यता और इसके आधार ईश्वरवाद की आलोचना और नकार में उन्होंने जो कहा, जिसमें दलित चेतना की अभिव्यक्ति है, उसे दबा कर या उपेक्षित रखा गया। किसी भी व्यक्ति, विचार या तर्क का जब कोई जवाब नहीं होता तो उसको दबाने या बदनाम करने की परम्परा सवर्ण हिंदू समाज में बहुत पुरानी है। शंकराचार्य और बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति के बीच हुए तर्क-युद्ध या शास्त्रार्थ में धर्मकीर्ति के तर्कों के समक्ष धराशायी शंकराचार्य को, राजा सुधन्वा की सेना के सानिध्य में उनके समर्थक ब्राह्मणों द्वारा, शोर-शराबे और शक्ति-बल से जबरदस्ती विजयी घोषित कर दिया गया। महाभारत में अश्वत्थामा की मृत्यु की घोषणा भी इसी प्रकार की गयी थी।

हालांकि ज्योतिबा फूले से पहले नामदेव, चोखामेला, कबीर और रैदास ने भी इन पाखण्डों को समझा था और अपनी-अपनी भाषा और शैली में इनका प्रतिकार भी किया था, किंतु अकसर ज्ञान न होने के कारण इन ग्रंथों में निहित बारीक कुटिलताओं को वे नहीं पकड़ पाए थे। ज्योतिबा फूले पहले व्यक्ति हुए जिन्होंने इन पाखण्डपूर्ण ग्रंथों का तार्किक अध्ययन किया और इनकी विसंगतियों को जन-मानस के सामने मौखिक और लिखित रूप में प्रस्तुत करके उनकी आंखें खोली। सही मायनों में ज्योतिबा फूले दलित समाज के पहले शिक्षक और प्रवक्ता हैं, जिन्होंने दलितों को ब्राह्मणों द्वारा रचित ग्रंथों के पाखण्डों से अवगत कराया।

ज्योतिबा फूले के परदादा महाराष्ट्र में सतारा से 40 किलोमीटर दूर स्थित कटगुण नामक गाँव के रहने वाले थे। उनके परदादा का नाम गोरे था, जो जाति से माली थे, जिसे शूद्र और निम्न जाति माना जाता है। थोड़ी सी कृषि-भूमि के सहारे परिवार का गुजारा कठिन था, इसलिए वह गाँव में 'चौगुला' के रूप में भी काम करते थे। तत्कालीन समय में प्रत्येक गाँव में दो मुख्य अधिकारी हुआ करते थे-'पाटील' और 'कुलकर्णी', जिन्हें 'चौधरी' और 'पटवारी' कहा जा सकता है। कुलकर्णी प्रायः ब्राह्मण हुआ करते थे। इन दोनों के अधीन 'चौगुला' (सहायक) हुआ करता था, जो इन अधिकारियों के रजिस्टर, पुस्तकों आदि के लाने और ले जाने, लगान की वसूली करने और कटाई के दिनों में फसलों का निरीक्षण करने में सहायता करता था। बाद में उनका परिवार पुणे आ गया था। यहीं पर ज्योतिबा फूले का जन्म हुआ। यही उनकी कर्मभूमि भी रही।

ज्योतिबा का जन्म 11 अप्रैल, सन 1827 को पुणे के पास एक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम गोविंदराव और माता का नाम चिमणाबाई था। ज्योतिबा के जन्म के एक वर्ष बाद ही चिमणाबाई का निधन हो गया। इसके कुछ समय बाद ही उनके पिता की जमीन का, जिस पर वे खेती करते थे, सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया। परिवार की आजीविका चलाने के लिए वे अपने परिवार को लेकर पुणे आ गए और बच्चों के लालन-पालन हेतु मौसेरी बहिन सगुणाबाई क्षीरसागर को अपने पास रख लिया। सगुणाबाई बाल विधवा थी और ईसाई मिशनरी में अनाथ बच्चों की देखभाल का काम करती थी। अंग्रेजी भाषा का भी उसे कुछ ज्ञान था। सगुणाबाई ने बहुत ममता और प्यार से बालक ज्योतिबा का पालन-पोषण किया और उन्हें कभी मां की कमी महसूस नहीं होने दी। बचपन से ज्योतिबा सगुणा को 'आऊ' कहकर सम्बोधित करते थे। सगुणा भी ज्योतिबा को अपने बच्चे की तरह प्यार करती थी और सदैव उन्हें पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित करती थी। 6 वर्ष की आयु में ज्योतिबा को स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। वह खूब मन लगाकर पढ़ते। बहुत जल्दी वे पढ़ना-लिखना सीख गए और हिसाब भी करने लगे। किंतु इसी दौरान कट्टरपंथी ब्राह्मणों द्वारा निम्न जाति के विद्यार्थियों के स्कूल प्रवेश का तीव्र विरोध किए जाने के कारण स्कूलों से निम्न जातियों के विद्यार्थियों को निष्कासित कर दिया गया। इसी दबाव में ज्योतिबा को भी स्कूल छोड़ना पड़ा। किंतु ज्योतिबा में पढ़ने की जबरदस्त लगन थी। स्कूल से पढ़ाई रूक जाने के बाद ज्योतिबा ने अपने पिता के साथ फूलों की खेती के काम में हाथ बंटाना शुरू किया। वह दिन में अपने पिता के साथ खेतों में काम करते लेकिन रात में टिमटिमाते दीये की रोशनी में पढ़ते

थे।

उन दिनों बाल विवाह की प्रथा थी। प्राय: छ: वर्ष की आयु तक लड़की और दस वर्ष की आयु तक लड़के का विवाह कर दिया जाता था। इस आयु तक किसी लड़की या लड़के का अविवाहित रह जाना समाज में अच्छा नहीं माना जाता था। और ऐसे परिवारों का सामाजिक सम्मान कम हो जाता था। ज्योतिबा का विवाह भी देर से हुआ था। 14 वर्ष की उम्र में उनका विवाह सतारा जिले के नायगाँव निवासी खंडूजी नेवसे और श्रीमती लक्ष्मीबाई की सुंदर, सुशील पुत्री सावित्रीबाई के साथ सम्पन्न हो गया। उस समय सावित्रीबाई की उम्र आठ वर्ष थी।

ज्योतिबा का शिक्षा के प्रति इतना लगाव देखकर उनके पिता गोविदराव ने ज्योतिबा को शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। सन 1841 में 14 वर्ष की आयु में उनको स्कॉटिश मिशन की अंग्रेजी पाठशाला में फिर से भर्ती कराया गया। यहां से उनके जीवन में नया मोड़ आ गया। हालांकि अन्य छात्रों की अपेक्षा ज्योतिबा की उम्र अधिक थी, किंतु इसका ध्यान मन में लाए बिना वह पूरी एकाग्रता के साथ अध्ययन करते थे और प्रत्येक परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होते थे। शीघ्र ही वह अपने अध्यापकों के प्रिय विद्यार्थी बन गए। इसी दौरान ज्योतिबा की कुछ प्रगतिशील ब्राह्मण और मुसलमान लड़कों के साथ घनिष्ठता हो गयी। इससे उनको धर्म के नाम पर ब्राह्मणों द्वारा की जा रही धूर्ततापूर्ण चालाकियों और अत्याचारों के बारे में पता चला। शिवाजी और जॉर्ज वाशिंगटन की जीवनियां पढ़ने से उनको श्रम, साहस और संघर्ष के बल पर आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। अपने अध्ययन के क्रम में उन्होंने एकनाथ की भागवत, ज्ञानेश्वरी और तुकाराम की गाथा तथा गीता, उपनिषद और पुराणों का भी अध्ययन किया। पाश्चात्य विचारकों में जॉन स्टुआर्ट मिल और हरबर्ट स्पेंसर आदि ने भी उनको प्रभावित किया। ज्योतिबा शरीर से बहुत सुंदर, स्वस्थ और ताकतवर थे। हालांकि उनको सवर्ण विद्यार्थियों से जाति-प्रथा और ऊंच-नीच के कटु व्यवहार का सामना करना पड़ा। किंतु उन्होंने इससे बिना विचलित हुए अपनी पढ़ाई जारी रखी। एक बार उनको एक ब्राह्मण मित्र के विवाह में शामिल होने का निमंत्रण मिला। वहां पर निम्न जातीय होने के कारण ब्राह्मणों ने उनका अपमान किया। इस घटना से उनको बहुत मानसिक आघात लगा। घर लौटने पर पिता गोविंदराव से उनकी बात हुई तो उन्होंने पूछा, 'किसने बनाया हमें नीच? यह सारा ब्राह्मणों का ढकोसला है। बारात की घोड़ी को छूने से उन्हें छूत नहीं लगती और हमारे छूने पर छूत लग जाती है। क्या हम जानवरों से भी गए-बीते हैं? वह शिक्षा से लेकर शस्त्र तक प्रत्येक क्षेत्र में पारंगत होना चाहते थे। इसलिए पढ़ाई के साथ-साथ उन्होंने लहूजी भाऊ नाम के एक मांग (अछूत) व्यक्ति से तलवारबाजी, निशानेबाजी आदि का प्रशिक्षण लिया। यह एक संयोग है कि ज्योतिबा के साथ दो अन्य युवाओं ने भी लहूजी साल्वे से सैनिक प्रशिक्षण लिया। इनमें एक वासुदेव बलवंत फड़के ने अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति में भाग लिया और दूसरे बाल गंगाधर तिलक थे।

शिक्षा प्राप्ति के दौरान् ज्योतिबा को हिंदू-धर्म की अन्य बहुत सी पुस्तकों के साथ-साथ टॉमस पेन की पुस्तकों 'राइट्स ऑफ मेन' और 'दि एज ऑफ रिजन' को भी पढ़ा। मानववाद के प्रबल पक्षधर और प्रवक्ता टॉमस पेन के विचारों का ज्योतिबा के चिंतन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अमेरिका के विद्रोही लेखक पेन की मान्यता थी कि 'देश, वंश, पंथ, स्तर, लिंग आदि के आधार पर मनुष्यों में भेदभाव करना ईश्वरी योजना के विरूद्ध है। हर एक को दूसरे की मनुष्यता की कद्र करनी चाहिए और सभी के साथ समानता का बर्ताव करना चाहिए।' (मुरलीधर जगताप, युगपुरुष महात्मा फूले, पृष्ठ-28-29) पेन के अनुसार,'व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को अपने-अपने विश्वास के अनुसार ईश्वर की भक्ति करने की छूट होनी चाहिए और इस बारे में किसी भी सरकार या अन्य संस्था को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। साथ ही यदि किसी की असहिष्णुता के कारण अन्यों की धार्मिक स्वतंत्रता पर आक्रमण का भय उत्पन्न होता हो तो संबंधितों की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करना सरकार का कर्तव्य होना चाहिए।' (वही, पृष्ठ-29) अपनी इस धर्म संबंधी विचार प्रणाली को पेन 'मानवता धर्म' (रिलीजन ऑफ ह्यूमेनिटी) कहते थे। पेन की आदर्शोक्ति थी-'पूरा विश्व मेरा देश है और सबकी भलाई करना मेरा धर्म है।' (वही, पृष्ठ-29)

पेन के मानवता-धर्म और बाद में ज्योतिबा फूले द्वारा स्थापित 'सार्वजनिक सत्यधर्म' में सैद्धांतिक रूप से बहुत समानता है। मानव का सम्मान, वैयक्तिक स्वतंत्रता का आग्रह और गुलामी का धिक्कार पेन की समग्र विचार प्रणाली की त्रिसूत्री थी। स्वतंत्रता का आग्रह और गुलामी का धिक्कार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन तीनों तत्वों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। ज्योतिबा ने भी अपने कार्यो और साहित्य में इन तीन तत्वों पर सदा ही बल दिया।' (वही, पृष्ठ-29)

मिशनरी कॉलेज में पढ़ते हुए ज्योतिबा को दो लाभ हुए। एक तो ईसाई पादरियों और अंग्रेज प्राध्यापकों के सानिध्य में ईसाई धर्म के बारे में गहराई से जानने-समझने का अवसर मिला और हिंदू धर्म की बुराईयों का पता चला। साथ ही चिंतनपरक, तार्किक और आधुनिक प्रगतिशील विचारों से परिपूर्ण पुस्तकें पढ़ने का भी अवसर मिला। दूसरे, प्रगतिशील विचारों वाले ब्राह्मण और मुसलमान सहपाठियों के साथ-साथ कुछ मराठा, ईसाई और निम्न जातीय युवाओं से उनकी घनिष्ठता हो गयी थी, जिनके साथ वह हिंदू धर्म की बुराईयों और उनके निराकरण के बारे में बात करते थे। अपने

गम्भीर अध्ययन, तार्किक चिंतन और मानववादी दृष्टिकोण के कारण ज्योतिबा अपने सभी साथियों के प्रिय और आदर्श बन गए थे। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक कट्टरता को ज्योतिबा समाज की प्रगति और विकास के लिए अभिशाप मानते थे और इस कारण इनका विरोध करते थे। इसके अलावा समाज में प्रचलित रूढ़ियों, प्रथाओं, मान्यताओं,अंधविश्वासों के कारण समाज में प्रचलित अमानवीय और समाज को पीछे की ओर ले जाने वाली जड़ परम्पराओं का भी उन्होंने विरोध किया। साथ ही उनके अंदर देश-प्रेम की भावना विकसित होती गयी। वह अंग्रेजी शासन के खिलाफ थे और चाहते थे कि अंग्रेजों को जल्द से जल्द देश से बाहर भगा देना चाहिए। इतने विशाल देश पर मुट्ठी भर अंग्रेज कैसे शासन कर रहे हैं और उनको क्यों नहीं मार भगाया जाता, जब उन्होंने इन प्रश्नों पर विचार किया तो उन्हें महसूस हुआ कि समाज में संगठन और एकता की कमी है, और समाज में एकता न होने का सबसे प्रमुख कारण अशिक्षा और समाज में जड़ तक फैली वर्णवादी ऊँच-नीच वाली जाति-व्यवस्था है। ब्राह्मण वर्चस्व वाला भारतीय समाज पुरुष सत्तात्मक समाज है। ब्राह्मण सब पर अपना प्रभुत्व बनाकर रखना चाहता है, इसलिए समाज में निम्न जातीय लोगों को और घर में स्त्री को निम्न मानकर दबाकर रखता है। दोनों को ही दबाए रखने के लिए उसने अपने धर्मग्रंथों में व्यवस्था की है। शिक्षित होने पर वे इन धर्म-ग्रंथों में निहित कुटिलताओं और पाखण्डों को जान जाएंगे इसलिए स्त्री और निम्न जातियां दोनों को ही उसने शिक्षा और मानव-अधिकारों से वंचित रखा।

वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि देश की आजादी और समाज की प्रगति के लिए जाति-व्यवस्था का नाश तथा स्त्री और निम्न जातियों का शिक्षित होना अनिवार्य है। शूद्र-अतिशूद्र समाज में समानता और आत्म-सम्मान की भावना को जागृत करने के लिए ज्योतिबा फूले ने उन्हें बताया कि वे जिस सामाजिक दासता का दंश भोग रहे हैं, वह उनके पूर्व-जन्मों का फल नहीं है, जैसाकि ब्राह्मणों द्वारा बताया जाता है, अपितु, यह अशिक्षा और सदियों से थोपी गयी मानसिक दासता का परिणाम है। उनका मत था कि समाज निर्माण और समाज परिवर्तन का जो काम एक स्त्री कर सकती है वह काम दस शिक्षक नहीं कर सकते। इसलिए स्त्री-शिक्षा को सर्वोपरि माना तथा अपनी शिक्षापूर्ण कर पुणे लौटते ही उन्होंने सबसे पहले अपनी पत्नी सावित्रीबाई को पढ़ाना शुरू किया। 14 जनवरी, 1848 में उन्होंने पुणे की बुधवार पेठ में अपने ब्राह्मण सहयोगी श्री भिड़े के मकान में कन्या पाठशाला की स्थापना की, जहां पर उच्च जातियों के लोग ही रहते थे। लड़कियों की शिक्षा की भारत में यह पहली पाठशाला थी। सावित्रीबाई को इस पाठशाला की मुख्य-अध्यापिका बनाया गया। सावित्रीबाई का अध्यापक बनना भी एक ऐतिहासिक घटना थी। इससे पूर्व भारत की किसी महिला को शिक्षिका बनने का अवसर नहीं मिला था। ज्योतिबा फूले के प्रयासों का परिणाम था कि सावित्रीबाई भारत की पहली महिला शिक्षिका बनीं। उस समय ज्योतिबा फूले की आयु केवल 21 वर्ष की थी। इतनी कम आयु के युवक द्वारा शुरू किया गया स्त्री शिक्षा का यह कार्य एक अदभुत, अनूठा और क्रांतिकारी कार्य था।

''सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक कट्टरता को ज्योतिबा समाज की प्रगति और विकास के लिए अभिशाप मानते थे और इस कारण इनका विरोध करते थे। इसके अलावा समाज में प्रचलित रूढियों प्रथाओं मान्यताओं, अंधविश्वासों के कारण अमानवीय और समाज का पीछे की ओर ले जाने वाली जड़ परम्पराओं का भी उन्होंने विरोध किया। साथ ही उनके अंदर देश-प्रेम की भावना विकसित होती गयी। वह अंग्रेजी शासन के खिलाफ थे और चाहते थे कि अंग्रेजों को जल्द से जल्द देश से बाहर भगा देना चाहिए।''

उस जमाने में समाज में यह धरणा थी कि स्कूल जाने से लड़कियां बिगड़ जाएंगी। कुछ लोग लड़कियों की शिक्षा को धर्म-विरूद्ध मानते थे और इसलिए अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए स्कूल नहीं भेजते थे। ज्योतिबा फूले ने लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोला तो बहुत से लोगों ने उनकी कड़ी आलोचना की और उनको भला-बुरा कहा। इतना ही नहीं बहुत से लोग सावित्रीबाई की हंसी उड़ाते थे, उन पर गंदी टिप्पणियां करते थे, उनके ऊपर गोबर व कीचड़ फेंककर मार देते थे, ताकि वह दुखी होकर लड़कियों को पढ़ाना बंद कर दें। किंतु सभी आलोचनाओं और विरोधों से विचलित हुए बिना ज्योतिबा पूरी दृढ़ता से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर रहे। इसका यह परिणाम हुआ कि सन 1849-50 में उनकी पाठशाला में पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या बढ़कर 70 तक हो गयी। इस पाठशाला के अच्छे परिणाम से ज्योतिबा

का हौंसला बढ़ा और उन्होंने इसके बाद पुणे शहर और देहातों में लड़कियों की कई पाठशालाएं स्थापित की।

इन पाठशालाओं के माध्यम से लड़कियों की शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने के बाद ज्योतिबा ने अछूतों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया तथा 15 मई, 1852 को अछूत बच्चों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला की स्थापना की। पूरे देश में अस्पृश्य जातियों के बच्चों की शिक्षा के लिए स्थापित की गयी यह पहली पाठशाला थी। दलितों के उत्थान की दिशा में आधुनिक भारत के इतिहास में ज्योतिबा फूले द्वारा किया गया यह पहला महत्वपूर्ण प्रयास था। विद्यालयों के लिए धन की व्यवस्था और प्रबंधन के कार्य में ज्योतिबा इतने व्यस्त रहते थे कि खाना खाने तक के लिए भी मुश्किल से समय निकाल पाते थे। किंतु इसके उपरांत वह स्वयं भी बच्चों को पढाते थे। सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अलावा वह विद्यार्थियों को धर्म, समाज, संस्कृति आदि के बारे में भी बताते थे। वेद या किसी भी धार्मिक ग्रंथ की रचना ईश्वर ने नहीं की है। इनकी रचना मनुष्यों द्वारा की गयी है, मिथ्या प्रचार ब्राह्मणों द्वारा अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए किया गया।

ज्योतिबा फूले के जीवन में ऐसे भी कई अवसर आए जब उनके पास खाने तक के लिए पैसे नहीं थे और उनको तथा सावित्रीबाई को भूखे ही रहना पड़ा। किंतु वे कभी हताश और दुखी नहीं हुए। अपने समाज-सुधार के अभियान को आगे बढ़ाते हुए ज्योतिबा फूले ने 'महिला सेवा मण्डल' की स्थापना की। सम्पूर्ण भारत में अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु कार्य करने वाली देश में यह पहली संस्था थी। अछूतों के साथ-साथ गरीब किसानों के घर जा-जाकर बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रेरित कर शिक्षा के माध्यम से उनके जीवन को बेहतर बनाने हेतु ज्योतिबा फूले ने अकथनीय प्रयास किया। 25 वर्ष की युवा उम्र में ही इतने बड़े और महान कार्य करने के कारण दूर-दूर तक ज्योतिबा की ख्याति फैल गयी। दलित समाज के वह मुक्तिदाता और मसीहा बन गए। स्त्री और दलितों की शिक्षा के प्रति ज्योतिराव द्वारा किए गए महान् कार्य के लिए 16 नवम्बर,1852 को मुम्बई सरकार द्वारा उनका नागरिक अभिनंदन कर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर अपने भाषण में ज्योतिबा फूले ने कहा था कि 'मैं ज्ञान का दीपक लेकर उन सबके पास जाना चाहता हूं जिनके जीवन में अंधेरा ही अंधेरा है। इस सम्मान-वस्त्र ने प्रमाणित कर दिया है कि ज्ञान सभी के लिए है, वह किसी की बपौती नहीं है। (युगपुरुष महात्मा फुले, मुरलीधर जगताप, पृष्ठ-47)। जानकारी के लिए यह बताना आवश्यक है कि उस समय केवल विख्यात संस्कृत पंडितों को ही सम्मान-वस्त्र भेंट किया जाता था। ज्योतिबा फूले पहले गैर-ब्राह्मण व्यक्ति थे जिनको सम्मान-वस्त्र भेंट कर सार्वजनिक अभिनंदन किया गया था।

उन दिनों समाज में विधवा स्त्रियों की दशा बहुत दयनीय थी। बहुत सी विधवा स्त्रियां अपनी गलती से अथवा पुरुषों की चालाकी का शिकार होकर गर्भवती हो जाती थी, उनकी समाज में बड़ी दुर्गति होती थी। उनके बच्चों को समाज में घृणा, अपमान और दुत्कार मिलती थी। ऐसी महिलाओं की सहायता करने के लिए ज्योतिबा फुले ने 28 जनवरी, 1853 को एक 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना की। किसी भी कारण से गर्भवती हुई विधवा महिला इस केंन्द्र में आकर अपनी प्रसूति करा सकती थी और बच्चे को यहीं पर छोड़कर जा सकती थीं। यदि चाहे तो वे स्वयं भी यहां पर रह सकती थीं। इससे बहुत सी विधवा स्त्रियों को सामाजिक कलंक और अपमान की जिंदगी जीने से मुक्ति मिली। पुणे में स्थापित इस प्रसूति-गृह की सफलता से प्रेरित होकर ज्योतिबा ने पण्ढरपुर में भी एक 'बाल-हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना की।

ज्योतिबा फूले और सावित्रीबाई की कोई संतान नहीं थी। प्रसूति-गृह में अपने अवैध बच्चे की प्रसूति कराने आयी काशीबाई नाम की एक विधवा ब्राह्मण स्त्री के बच्चे को, उसके अनुरोध पर, फूले दम्पत्ति ने गोद ले लिया। अपने इस दत्तक पुत्र का नाम उन्होंने यशवंत रखा। (ज्योतिबा फूले के अत्यधिक प्रभावित होने का परिणाम था अथवा महज एक संयोग कि डॉ. अम्बेडकर के एकमात्र जीवित पुत्र का नाम भी यशवंत था)। फूले दम्पत्ति ने बहुत अच्छी तरह से यशवंत का पालन-पोषण किया। अपने माता-पिता की सेवा भावना से प्रभावित और प्रेरित होकर यशवंतराव ने डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की। माली समाज के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ज्ञानवा औष्णराव सहाणे की पुत्री राधाबाई के साथ यशवंत का विवाह हुआ। उस समय में जब जाति-बाह्य विवाह करना पाप समझा जाता था, यशवंतराव और राधाबाई के अंतर्जातीय विवाह को समाज में एक आश्चर्यजनक और समाज-विरोधी घटना के रूप में देखा गया था। बहुत से लोगों ने इस विवाह का विरोध किया।

ज्योतिबा ने समाज की बेहतरी के लिए कई प्रकार के कार्य किए। पुणे में राज्य की ओर से ब्राह्मणों को दान दिए जाने की व्यवस्था थी। इससे न केवल अनपढ़, अयोग्य ब्राह्मणों की आजीविका चलती थी और वे भोली-भाली अशिक्षित-अज्ञानी जनता में कुरीतियों, अंध-विश्वास और पाखण्ड फैलाते थे। बहुत से लोग फर्जी नामों से भी राज्य से यह धनराशि प्राप्त करते थे। इस व्यवस्था के द्वारा सरकारी धन ब्राह्मणों पर लुटाया और उनके द्वारा खूब लूटा जा रहा था। यह व्यवस्था शिवाजी, पेशवा से लेकर अंग्रेजों के आने पर भी चालू रही थी। ज्योतिबा फूले ने इस व्यवस्था का जोरदार विरोध किया तथा इस व्यवस्था को समाप्त करवाकर इस पर खर्च होने वाली राशि का मराठी साहित्य के प्रकाशन और दूसरी भाषाओं से मराठी भाषा में अनुवाद पर खर्च कराने की व्यवस्था

करायी। मराठी भाषा और साहित्य की वृद्धि और विकास का श्रेय ज्योतिबा फूले को जाता है।

ज्योतिबा फूले ने अपने विचारों को समाज में दूर तक फैलाने के लिए कई पुस्तकों की रचना भी की। उनकी पहली पुस्तक 'तृतीय रत्न' एक नाटक था, जो 1855 में प्रकाशित हुआ। सन 1869 में 'शिवाजी-चा-पोवाड़ा' (छत्रपति राजा शिवाजी भोसले का पंवाड़ा) नामक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् एक के बाद एक उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'ब्राह्मणांचे कसब' (ब्राह्मणों की चालाकी),'किसान का कोड़ा','अछूतों की कैफियत' और 'गुलामगीरी' शामिल हैं। 'सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक' उनके द्वारा लिखित सबसे अंतिम पुस्तक है। यह पुस्तक 1889 में प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा भी उन्होंने कई लेख लिखे। 'गुलामगीरी' को तो दलितों की मुक्ति का घोषणा-पत्र माना जाता है। उन्होंने 'सतसार' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। ज्योतिबा फूले ने बाद में जिस 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की थी उसकी वैचारिकी की नींव 'सतसार' के द्वारा ही रखी गयी थी। 'सत्य-शोधक समाज' वस्तुतः वर्ण जातिगत भेदभाव, ऊंच-नीच, ब्राह्मणों द्वारा फैलाए गए झूठ, पाखण्ड, छल-कपट, ठगी, अंध विश्वास, और इनके द्वारा दलित समाज को शोषण के प्रति जागरूक बनाने का एक आंदोलन था। बहुत थोड़े समय में ही दलित समाज की आकांक्षाओं का प्रतीक और संघर्ष-चेतना का संवाहक बन गया था। 'सत्य-शोधक समाज' के द्वारा ज्योतिबा फूले ने कम खर्च में, ब्राह्मण-पुरोहितों के बिना सरल पद्धति से दहेज-मुक्त विवाह करवाए। इसे पुरोहितवाद के प्रतिकार के प्रथम और सफल प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। विधवाओं के पुनर्विवाह करवाए। बाल-विवाहों के दुष्परिणामों के बारे में समाज को जागृत किया।

ज्योतिबा फूले ने अपने कार्यों और लेखन के माध्यम से ब्राह्मणवाद का जितना प्रखर विरोध किया उससे वह ब्राह्मणों की आंखों की किरकिरी बन गए। अपने रास्ते से हटाने के लिए ब्राह्मणों ने ज्योतिबा फूले की हत्या के लिए दलित समाज के दो बलिष्ठ और खूंखार व्यक्तियों को तैयार किया। किंतु ज्योतिबा के विचार सुनकर उनकी हत्या करने के बजाए वे ज्योतिबा के अनुयाय बन गए। बाद में उनमें से एक ज्योतिबा का अंगरक्षक बना और दूसरा सत्य-शोधक समाज का महत्वपूर्ण कार्यकर्त्ता बना, दलित-शोषित समाज के आदर और सम्मान के पात्र हो गए। दलित लोग उनके एक इशारे पर कुछ भी करने के लिए तत्पर रहते थे।

1876 से 1882 तक ज्योतिबा फूले पुणे की नगरपालिका के सदस्य चुने गए। इस दौरान उन्होंने अनेक समाजोपयोगी प्रस्ताव समिति में पेश कर समाज का हित किया। दलित-पिछड़ी बस्तियों के लिए बिजली-पानी की व्यवस्था कराने का श्रेय ज्योतिबा फूले को जाता है। उन्होंने ही इसके लिए नगर पालिका समिति में जोरदार आवाज उठायी। फिजूलखर्ची के वह सख्त विरोधी थे। नगर पालिका की फिजूलखर्ची रोकने के लिए कई व्यवहारिक सुझाव दिए। वायसराय के पुणे आगमन पर शहर में सजावट पर हुई फिजूलखर्ची का उन्होंने यह कहकर विरोध किया था कि फिजूलखर्ची की बजाए यह धन गरीबों की शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए। शराब की दुकानें बढ़ाने के निर्णय का भी ज्योतिबा फूले ने तीव्र विरोध किया था क्योंकि यह लोगों के स्वास्थ्य और जीवन से खिलवाड़ है। पशु चिकित्सा कॉलेज का निर्माण, प्राइमरी पाठशालाओं में छात्रवृत्तियों की संख्या में वृद्धि, नए बाजार के निर्माण के पीछे उनकी उल्लेखनीय भूमिका रही। दलितों के साथ-साथ किसानों की दुर्दशा के प्रति भी ज्योतिबा फूले बहुत चिंतित रहते थे और उनकी दशा सुधारने के लिए कई उल्लेखनीय कार्य किए।

साठ वर्ष की आयु तथा सार्वजनिक और समाज-सुधार के क्षेत्र में निरंतर महान काम करते हुए चालीस वर्ष हो जाने पर ज्योतिबा फूले का 11 मई 1888 को मुम्बई में नागरिक अभिनंदन कर उनको 'महात्मा' की उपाधि से सम्मानित किया गया। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ इस अवसर पर भेजे अपने संदेश में ज्योतिबा फूले को 'भारत का बुकर टी वाशिंगटन' कहकर उनका सम्मान किया। इसके कुछ माह बाद ही जुलाई 1888 में वह लकवा रोग से ग्रस्त हो गए। उनके शरीर का दायां भाग निष्क्रिय हो गया। इसके उपरांत उनकी सक्रियता में कोई कमी नहीं हुई। उन्होंने बाएं हाथ से काम करना शुरू किया और बाएं हाथ से ही 'सार्वजनिक सत्यधर्म' पुस्तक को लिखकर पूरा किया। स्वास्थ्य अधिक बिगड़ने पर उनका घर से बाहर निकलना बंद हो गया और वह बिस्तर पर ही लेटे रहने को मजबूर हो गए। इस दौरान भी उन्होंने अपनी सक्रियता बनाए रखी। और पत्रों के द्वारा लोगों के साथ सम्पर्क बनाए रखा। इस दौरान् लिखे उनके पत्रों की सबसे विशेष बात यह थी कि वह प्रत्येक पत्र में सबसे ऊपर 'सत्यमेव जयते' लिखा करते थे। सत्य के प्रति ज्योतिबा फूले का आग्रह जबरदस्त था। उन्होंने संस्था बनायी-'सत्यशोधक समाज', जिस धर्मको उन्होंने अपनाया और पालन किया उसे नाम दिया 'सार्वजनिक सत्यधर्म' और पत्र लिखते समय उनके शीर्ष पर भी लिखते थे तो 'सत्यमेव जयते'। उपचार के बावजूद लकवे की इस बीमारी से वह उबर नहीं सके। उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होता गया और सन 1890 की 28 नवम्बर को 63 वर्ष की आयु में मानवता के प्रखर प्रवक्ता और पोषक तथा सत्य के महान साधक, सामाजिक क्रांति के पितामह क्रांतिसूर्य ज्योतिबा फूले का निधन हो गया। □

(लेखक जाने माने दलित सहित्यकार हैं)

भारतीय इतिहास में नारी की सामाजिक स्थिति और डॉ. अम्बेडकर का योगदान

■ कपिल गौतमराव मून

भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि नारी ने अनेक क्षेत्रों में गौरवमयी कीर्ति अर्जित की थी। नारी को देवीय शक्ति के रूप में स्थान मिला था। उनकी सर्वत्र पूजा होती थी। पूजा से तात्पर्य उनकी मान-मर्यादा और उनके अधिकारों की रक्षा से है। उन्हें गृहलक्ष्मी और गृहदेवी के नाम से भी संबोधित किया जाता था। गृहस्थी का कोई भी कार्य उनकी सहमति के बिना नहीं किया जाता था। जीवन के अनेक अवसरों पर वे पुरुष से आगे रहती थी। धार्मिक कृत्य भी उनके अभाव में अपूर्ण माने जाते थे। धार्मिक, सामाजिक और रणक्षेत्र में अपने पति का सहयोग देना उनका कर्तव्य माना जाता था।

भारतीय इतिहास में नारी का सामाजिक उत्तरदायित्व इतना महत्त्वपूर्ण होने के बाद भी भारत के हिंदू समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। धर्म के नाम पर नारी के प्रताड़न की जो व्यवस्थाएँ दी गई और धर्म के ठेकेदारों ने नारी के तन का पैशाची दोहन किया, उसका अनुकरण हिंदू समाज ने व्यवहार में खुलकर और निरंकुश होकर किया। सामान्यत: यह कहा जाता है कि भारतीय समाज में नारी की सामाजिक स्थिति सम्मानपूर्वक रही। उसे शक्ति के साकार रूप में माना गया और नारी की लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा के रूप में पूजा-अर्चना की जाती रही। नारी को पुरुष का सहयोगी अथवा अर्द्धांगिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया कालान्तर में कहा जाता है कि यह सामाजिक स्थिति बदलती गई और पुरुष इनके मान-सम्मान तथा अधिकारों को छीनता गया। फलत: उनकी स्थिति में गिरावट व अवनति आती गई।

यह माना जाता है कि समय चक्र परिवर्तनशील है। संसार की हर गतिविधियाँ भी परिवर्तनशील होती है। समय के साथ-साथ व्यवस्था में भी परिवर्तन आया। नारी का प्रेम, बलिदान और सर्वस्व समर्पण की भावना कालान्तर में उल्टा उन्हीं के लिये विष बन गया। समाज की घृणित विचारधारा ने उन्हें पुरुषों के बराबरी के पद से हटा दिया और समाज में नारी का स्थान गौण हो गया। उनको पर्दे के पीछे रहने के लिए विवश कर दिया गया। उनका शिक्षा का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया। उनके सामाजिक जीवन का क्षेत्र सीमित कर दिया गया और उनकी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी को पूर्ण रूप से गुलाम कर उनकी स्वतंत्रता का हनन किया और उनके सारे अधिकारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। नारी वर्ग के लिए सर्वाधिक प्रतिकूल स्थिति उस समय थी जब मनुस्मृति को सामाजिक एवं विधिक मान्यता मिली। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने भी मनुस्मृति को न केवल नारी वर्ग की अवनति का साधक बतलाया अपितु उसे समस्त हिंदू भारतीय समाज के पतन का कारण माना। क्योंकि मनस्मृति में नारी के बारे में लिखा गया है, ''नारी की रक्षा उसके बचपन में उसका पिता करता है, युवावस्था में जब उसका पति दिवंगत हो जाता है तब उसके पुत्र उसकी रक्षा करते हैं।'' अर्थात् नारी कभी भी स्वतंत्र

रहने योग्य नहीं है।

नारी की सामाजिक स्थिति कल और आज

कल की नारी की सामाजिक स्थिति में चर्चा करते समय यह सच्चाई सामने आती है कि भारत के हिंदू समाज में नारी की सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय रही हैं । नारी वैदिक कालीन समाज में ही भोग्या और दासी बन चुकी थी। वैदिक काल में आर्य-अनार्य के बीच जो संघर्ष होता रहता था, उसमें पुरुष मारे जाते थे और नारियाँ पकड़ी जाती थी। पकड़ी हुई नारियाँ बलात्कार की शिकार होती थीं, सामग्री की भाँति बेची जाती थीं और दासी के रूप में दान में दी जाती थी। वैदिक काल में इस प्रकार की नारी की सामाजिक स्थिति थी। वैदिक काल से ही समाज में नारी मर्यादा का स्तर निरन्तर गिरता गया। नारी को इसी काल में ही नर्तकी और वेश्या बना दिया गया। इन वेश्याओं को गणिका और अप्सरा कहा जाता था। गणिका नारी को वस्त्रहीन कर नचाए जाने का वर्णन वेदों में अनेक स्थानों पर आया है। वैदिक काल में नारी को नंगा नचाया जाता था, यह नारी की अधोगति का निम्नस्तर था। वैदिक काल के बाद समाज में नारी की मर्यादा का स्तर और भी गिरता चला गया। रामायण, महाभारत के काल में नारी पुरुष की छाया बन गई। सीता राम की छाया बनी, महाभारत में धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी आँखों पर पट्टी बाँधकर पति की अनुगामिनी बनी और विद्रोह करने पर भी द्रोपदी जुऐ के दांव पर लगा दी गई। यह कहा जाता है कि मध्यकाल में नारी की दशा अति अधोगति को प्राप्त हो गई। इस काल में विदेशी आक्रमण होने लगे। ईसा पूर्व (386) में पंजाब पर सिकन्दर ने और ईसा पूर्व (180) में दैमित्रियस ने अपने जमाता मिनान्दर के साथ आक्रमण किया। पुरुषों का कत्लेआम किया गया। जो हिंदू नारियाँ बची, वे छकड़ों में भरकर विदेशों में ले जाई गई और अरब के चौराहों पर आनों में बेच दी गई। अर्थात् मध्यकाल में भी नारी स्वतंत्र नहीं थी और उसे सिर्फ गुलामी का ही सामना करना पड़ा और आक्रमणकारियों की शिकार बनना पड़ा। मुगल काल में भी दासियों का व्यापार विदेशों के साथ होता था। इंग्लैण्ड और पुर्तगाल से भारत का यह व्यापार चलता था। नारी रक्षा के लिए बादशाहों द्वारा महलों में जनखाओं का प्रबन्ध किया जाता था। 300 वर्ष तक मुस्लिम शासन में नारी विलासिता की सामग्री बनी रही। इस प्रकार नारी को उनके सभी अधिकारों से दूर करा दिया गया और उनको सिर्फ भोग वस्तु माना गया।

जातिवाद की चातुर्यपूर्ण व्यवस्था ने भारतीय नारी को और भी ज्यादा गुलाम बना दिया गया। इस व्यवस्था ने किसी एक धर्म की नारी के लिये नियम नहीं बनाये बल्कि समूची नारी की गुलामी के लिये नियम बनाया। जिसमें सभी धर्मों की नारी को वे पुरुषों से अलग रखना चाहते थे। जब मनुस्मृति का निर्माण हुआ तब मनुस्मृति ने फिर एक बार भारतीय नारी को गुलामी में बंद कर दिया। कहा जाता है कि मनु शूद्रों के प्रति जितना क्रूर था, उतना ही नारी नियम के प्रति क्रूर था। मनुस्मृति में जितने भी नारी के लिए नियम बनाए हैं वे सभी के सभी नियम नारी के अधिकारों पर प्रतिबंध लगाते हैं और उसे गुलाम बनाते हैं।''

जातिवाद की चातुर्यपूर्ण व्यवस्था ने भारतीय नारी को और भी ज्यादा गुलाम बना दिया गया। इस व्यवस्था ने किसी एक धर्म की नारी के लिये नियम नहीं बनाये बल्कि समूची नारी की गुलामी के लिये नियम बनाया। जिसमें सभी धर्मों की नारी को वे पुरुषों से अलग रखना चाहते थे। जब मनुस्मृति का निर्माण हुआ तब मनुस्मृति ने फिर एक बार भारतीय नारी को गुलामी में बंद कर दिया। कहा जाता है कि मनु शूद्रों के प्रति जितना क्रूर था, उतना ही नारी नियम के प्रति क्रूर था। मनुस्मृति में जितने भी नारी के लिए नियम बनाए हैं वे सभी के सभी नियम नारी के अधिकारों पर प्रतिबंध लगाते हैं और उसे गुलाम बनाते हैं। अर्थात् मनुस्मृति ने नारी की स्वतंत्रता को छीन लिया। उसे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया और विधवा नारी को जीवन में सती प्रथा, दहेज दानव, मंदिरों में विधवाओं का नारकीय जीवन, बाल विवाह, जैसी क्रूर प्रथा का शिकार होना पड़ा। नारी सिर्फ घर की चारदीवारी तक ही सीमित होकर अपना जीवन काटती रही। सभी धर्मों ने नारी को पापी-नरक द्वारा करार कर दिया था। संत कवयित्रियों तक ने स्वयं की दासता ही व्यक्त की है। नारी का मुक्ति मार्ग, न केवल नारी शेष से, नारी निंदा से तैयार हुआ है। स्वातंत्र्य पूर्व काल में अत्युच्च पद पर बैठने वाली रजिया सुलतान एकमात्र नारी दिखाई देती है। रानी लक्ष्मीबाई, चाँदबीबी, ताराबाई, अहिल्याबाई आदि सत्ता पर थी। लेकिन उसके बाद पुरुष प्रधान संस्कृति में नारी की असाधारण

ाता को नकारकर उसे दासता की बेड़ियों में जकड़ने के ही प्रयास होते आ रहे हैं। उन्नीसवीं सदी में नारी सुधार की जरूरत महसूस होने लगी। भारत के इतिहास में मोहम्मद तुगलक ने नारी अधिकार की पहली सनद बहाल की। तुगलक ने सख्ती से सती प्रथा पर पाबन्दी लगाई। इतना ही नहीं सती होने से पहले सरकारी अनुमति लेने की शर्त जारी की। लेकिन तत्कालीन मौलवी, पंडितों ने तुगलक को पागल करार देकर उसकी योजना को असफल बनाया। इससे यही स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी को वे सदा के लिए गुलाम ही रखना चाहते थे।

लेकिन समय बदलता गया और नारी उत्थान के लिए कुछ महापुरूषों द्वारा प्रयास किया गया। जिसमें राजाराम मोहन राय जैसे लोगों ने सती प्रथा के विरोध में आंदोलन किया। नारी के उत्थान में महात्मा ज्योतिबा फूले का विशेष सहभाग रहा है। उन्होंने नारी समानता और शूद्र-अतिशूद्र संघर्ष को अपने आंदोलन में प्रथम स्थान दिया था। उन्होंने निजी तौर पर जो प्रयास किये उसमें भी नारी का विचार प्रथम था। उन्होंने नारी के लिए केवल ज्ञान के दरवाजे ही नहीं खुले किए अपितु बाल विवाह, प्रौढ़ विवाह, विधवा विवाह, पतिता-परित्यक्ताओं के जटिल नाजुक प्रश्न, बालहत्या प्रतिबन्धक गृह, इन सभी क्षेत्रों में अगुआ बनकर प्रत्यक्ष कार्य किया। उनके लिए संस्थाएँ खोली। आधुनिक विचारों का प्रसार एवं प्रचार किया। महात्मा फूले केवल बाल विवाह के विरूद्व प्रचार कार्य करके रूके नहीं बल्कि बालिग लड़की की सम्मति से विवाह तय हो ऐसे 'सम्मति विवाह' का विचार प्रचलित करने का उन्होंने प्रयास किया। महात्मा फूले के बाद भारतीय नारी के सामाजिक उत्थान के लिए सबसे ज्यादा प्रयास डॉ. अम्बेडकर ने किया। जब डॉ. अम्बेडकर जुलाई 1913 में न्यूयॉर्क पहुँचे और कोलंबिया यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया तब वहाँ का वातावरण उदार और समानता पर आधारित देखकर वे प्रभावित हुए। वहाँ नारी को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। अर्थव्यवस्था में नारी को सीधा योगदान था। हर क्षेत्र में वे पुरुषों से कन्धे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही थी। डॉ. अम्बेडकर के लिए यह एक नया ही संसार था नारी के सशक्तीकरण से वे बहुत प्रभावित हुए और पहला सपना उन्होंने यही देखा कि भारत लौटकर यहाँ की नारी को भी वे इसी तरह सशक्त बनाने को प्रयास करेंगे। जब डॉ. अम्बेडकर ने भारत में आकर अपना संघर्ष शुरू किया तब भारत की नारी के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान विशेष सराहनीय रहा हैं। जिसके चलते आज भारत की नारी पुरुषों से कन्धे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में काम कर रही है। भारत में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं होगा जिसमें भारत की नारी ने अपना स्थान निश्चित नहीं किया हो। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो आज भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आया है। जिसके चलते सदियों से गुलाम नारी आज सरकारी नौकरी, भारतीय संसद में सांसद, विभिन्न विधानसभाओं में विध ायक, नगर निगमों में सदस्य, ग्राम पंचायतों में ग्राम प्रधान की भूमिका निभा रही हैं। इतना ही नहीं कि प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और मुख्यमंत्री की भी भूमिका भारतीय नारी ने निभाई है और आज वर्तमान में भी निभा रही हैं, यह सब डॉ, अम्बेडकर के संघर्षो की वजह से।

भारतीय नारी के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका

डॉ. अम्बेडकर 'आत्मोभार' को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानते थे। उन्होंने भारतीय नारी के उत्थान में अपने शिक्षा काल से ही प्रयास किया। 4 अगस्त 1913 को न्यूयार्क से अपने एक मित्र को लिखे पत्र में डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं, ''यह सोचना गलत है कि माता-पिता बच्चे को केवल जन्म देते हैं, भविष्य नहीं। माता-पिता अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। यदि हम इस सिद्धान्त पर चल पड़े तो अति शीघ्र वह शुभ दिन देख सकते हैं। लड़कों के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा की और भी ध्यान देकर हम शीघ्र प्रगति कर सकते हैं। आप अपनी पुत्री को शिक्षा देकर इसका लाभदायक परिणाम स्वयं देख सकते हैं।'' डॉअम्बेडकर का मानना था कि किसी भी देश की आबादी का आधा हिस्सा नारियों का होता है और इसलिए तरक्की वह तभी कर सकता है जब उसकी नारियों को तरक्की का समान अवसर मिले। उन्होंने अपने आन्दोलन में भी नारी को प्रमुख स्थान दिया था। नारी ही समाज का उद्धार करेगी और कर्मकांड, अंधविश्वास को दूर करेगी। इस पर उनकी प्रगाढ़ श्रृद्धा थी। इस कारण वे अपने भाषणों द्वारा नारी को सम्बोधित करते रहे, ''आप अपने बच्चों को पढ़ाओ। अच्छा रहन-सहन अपना लो। कपड़े फटे हों लेकिन साफ ढंग के बनाकर इस्तेमाल करो।'' अर्थात् नारियों ने किस तरह साफ-सुथरा रहना चाहिए इसके बारे में भी डॉ. अम्बेडकर का यह विचार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। नारी को जीवन में कैसे रहना चाहिए इसकी सीख डॉअम्बेडकर देते है। नागपुर में 18, 19 और 20 जुलाई 1942 को अखिल भारतीय दलित परिषद् का तीसरा अधिवेशन आयोजित किया गया था। इस अधिवेशन में 20-25 हजार महिला उपस्थित थी। उस समय उन्होंने कहा, ''किसी भी समाज में होने वाली नारी की प्रगति के आधार पर उस समाज की प्रगति को आँक सकते हैं।'' जिस मनुस्मृति ने भारतीय नारी को गुलाम बनाया था और उनके सभी अधिकार छीन लिए थे ऐसी 'मनुस्मृति' की डॉ. अम्बेडकर ने होली जलाई। क्योंकि उनका मानना था कि इस ग्रंथ के प्रावधानों के चलते ही भारतीय समाज में नारी को उनका उचित अधिकार नहीं मिल सका हैं। सन् 1928 में साईमन कमीशन के समक्ष दिए गए अपने साक्ष्य में भी डॉ. अम्बेडकर ने वयस्क मताधिकार की जोरदार वकालत की और कहा कि 21

वर्ष के ऊपर सभी भारतीयों को चाहे वे महिला हो या पुरुष उनको मतदान का अधिकार मिलना चाहिए। 1942 में डॉ. अम्बेडकर को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में कार्यकारी सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया और उन्होंने भारत के इतिहास में पहली बार भारतीय नारी के लिए 'प्रसूति अवकाश' की व्यवस्था की। जो आज भी भारत की सभी सरकारी एवं गैरसरकारी कर्मचारी नारी को दी जाती है। यह भारत की नारियों के लिए बहुत बड़ी उपलब्ध है आगे चलकर जब डॉ. अम्बेडकर को संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया तो उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 14 में ऐसा प्रावधान रखा कि लिंग के आधार पर नारियों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। इतना ही नहीं, कानून मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने 'हिंदू कोड बिल' संसद में पेश किया, जिसका उद्देश्य था अलग-अलग पंथों में बंटे हिंदू समुदाय की नारियों के लिए एक समान आचार संहिता तैयार करना, जिसमें भारतीय नारियों के वैवाहिक मामले में, तलाक संबंधी मामले में, उत्तराधिकार, गोद लेने और गुजारा भत्ता के मामले में तथा पारिवारिक हिस्सेदारी के मामले में समान अधिकार मिले ऐसा उनका आग्रह था। लेकिन रूढ़िवादी लोगों के विरोध के कारण 'हिंदू कोड बिल' उस समय पास नहीं हो सका और डॉ. अम्बेडकर ने अपने कानून मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी के उत्थान के लिए डॉ. अम्बेडकर कितने प्रयासरत थे। उन्होंने अपने मंत्रीपद का थोड़ा सा भी विचार नहीं किया। लेकिन पद से इस्तीफा देने के बाद भी डॉ. अम्बेडकर चुप नहीं बैठे और सामाजिक तथा राजनैतिक मंचों से और अपनी लेखनी के माध्यम से इस बिल को पारित कराने के लिए संघर्ष करते रहे। बाद में सन् 1955-1956 में इसी 'हिंदू कोड बिल' को कई टुकड़ों में जैसे हिंदू विवाह कानून, हिंदू उत्तराधिकार कानून, हिंदू गोद एवं गुजारा भत्ता कानून जैसे नामों से पास किया गया। इन कानूनों को पारित करवाने में भी डॉ. अम्बेडकर ने अहम् भूमिका निभाई। डॉ. अम्बेडकर का सपना पूरी तरह तब साकार हुआ, जब 2005 में हिंदू उत्तराधिकार कानून में संशोधन करके पुत्री अर्थात् नारी को भी पुत्र के समान पैतृक संपत्ति में बराबरी का अधिकार दिया गया। इस प्रकार भारतीय नारी के उत्थान के लिए डॉ. अम्बेडकर की यह मौलिक देन है। जिसके कारण भारतीय नारी सदा के लिए डॉ. अम्बेडकर की ऋणी रहेगी।

जीवन का कोई औचित्य नहीं होता है। भारतीय संस्कृति में नारी के विभिन्न रूपों को माँ, बहन, अर्धांगिनी, बेटी के नामों से जाना जाता है। मोहम्मद अली जिन्ना के अनुसार, ''दुनिया में कलम और तलवार दो सबसे बड़ी शक्तियाँ है पर इन दोनों शक्तियों से बड़ी एक और शक्ति है जिसे नारी कहते हैं।'' अगर भारत का इतिहास पलटकर देखें तो सीता, दुर्गा, पार्वती को माता का दर्जा दिया गया है। लेकिन अलग-अलग समय में भारतीय नारी पर कई प्रकार का अन्याय-अत्याचार होते आ रहा है। जब मनुस्मृति का निर्माण हुआ तब महिलाओं पर होने वाला अन्याय-अत्याचार चरम सीमा पर पहुँचा था। जिसके नियमों ने भारतीय नारी को गुलाम किया था और उनकी स्वतंत्रता छीन ली थी।

लेकिन भारत की भूमि पर डॉ. अम्बेडकर ऐसे महामानव का जन्म हुआ जिन्होंने भारतीय नारी के उत्थान के लिए अपने आखिरी सांस तक प्रयास किया और भारतीय नारी को एक नई दिशा दी। डॉ. अम्बेडकर को भी जब की मौका मिला तब उन्होंने भारतीय नारी का सामाजिक दर्जा सुधारने के लिए विशेष प्रयास किया। चाहे वह संविधान बनाते समय हो या 'हिंदू कोड बिल' को संसद में पेश करते समय हो, सदैव प्रयास किया। इतना ही नहीं उन्होंने अपने कई भाषण और लेखनी द्वारा भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति को उजागर किया।

इसका नतीजा यह हुआ कि आज भारत की नारी राजनीति, कला, विज्ञान, व्यापार चिकित्सा, खेल आदि हर क्षेत्र में पुरुषों के बराबर में है। किरण बेदी, साईना नेहवाल, किरण मजूमदार, सुनीता विलियम्स जैसी महिलाएं इस तथ्य को और भी पुख्ता करती हैं। वर्तमान समय में भारत की नारी अपना फैसला करने में सक्षम हैं और स्वतन्त्र भी, कारण उनका शिक्षित होना है। आज भारत की नारी का एक बहुत बड़ा तबका विभिन्न क्षेत्रों में कामकाजी है जो कि उनके बढ़ते वर्चस्व को दिखाता है।

सन्दर्भ सूची

(1) पूर्वदेवा-सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, अप्रैल, सितम्बर 2001

(2) डॉ. रामबचन राय, 'भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व', 1993

3) एस. एल. सागर, भारत की संतप्त नारी, सागर प्रकाशन, मैनपुरी (उ. प्र.), 1998

(4) सम्पादक-डॉ. शरणकुमार लिंबाले, अनुवादक सम्पादक-डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, 'प्रज्ञासूर्य डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

(5) आनंद श्रीकृष्ण, लेख-'विमिन पॉवर की जड़ में डॉ. अम्बेडकर', नवभारत टाईम्स, 13 जुलाई 2013.

(6) डॉ. सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु, 'केवल दलितों के मसीहा नहीं हैं अम्बेडकर', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.

(7) चांगदेव भवानराव खैरमोडे 'डॉ. अम्बेडकर आणि हिंदू कोड बिल' सुगावा प्रकाशन, पुणे महाराष्ट्र 2012. □

(लेखक डॉ बाबा साहब अम्बेडकर दलित एवं जनहित अध्ययन केन्द्र, म.गां.अं.हिं.वि.वि. वर्धा में शोधार्थी हैं।)

दलित साहित्य में नारी मुक्ति के प्रश्न

■ रजत रानी मीनू

हिन्दी दलित साहित्य में नारी मुक्ति के प्रश्नों पर चर्चा करने से पूर्व विश्व में नारी मुक्ति से जुड़े प्रश्नों की पूर्वपीठिका पर अत्यंत संक्षेप में नजर डाल लेना समीचीन होगा। 8 मार्च महिला दिवस के रूप में पूरे विश्व में मनाया जाता है। यह स्त्री पर्व है। यह स्त्री चेतना और उसकी जाग्रति का प्रतीक भी है। इस दिन की शुरूआत 1857 को न्यूयार्क में कपड़े की मिलों की कामगार स्त्रियों ने की थी। उन्होंने अपने वेतन व काम के घंटे 15-16 से घटाकर 10 घंटे करने की मांग को लेकर एक प्रदर्शन किया था। विश्व में स्त्रियों का यह प्रथम प्रदर्शन था, जिसमें अपने समान अधिकार की बात उठाई गई थी। यह दिन स्त्रियों के अधिकार चेतना का पहला दिवस था। उनके उठाये गए इस कदम को उस समय की ट्रेड यूनियनों ने भी पसंद नहीं किया था। इस दिन की एक खास बात यह भी है कि यह ऐसी ट्रेड से जुड़ी श्रमिकाएं थी जो न तो फैशन से जुड़ी थी और न ही उनकी मांग देह मुक्ति की थी। नैसर्गिक रूप से लिंग आधारित विषमतावादी श्रम और उससे जुड़े गैरबराबरी पारिश्रमिक के विरोध में यह तर्कसंगत आवाज थी। हालांकि 19वीं सदी से पूर्व भी स्त्री से जुड़ी कुछ आवाजें मुखर हुई थीं।

स्त्रियों की आजादी का पहला पाठ संयुक्त राज्य अमेरिका के मैसाच्यूएट्स राज्य में 1611 में वोट देने का अधिकार से शुरू हुआ। इसके लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ा था। मगर दुर्भाग्य यह रहा कि कुछ स्त्री विरोधी विचारकों की वजह से उनका यह मताधिकार इसी राज्य में 1780 में वापस ले लिया गया था। इन निर्णयों से दुनिया में स्त्रियों के समर्थन और विरोध के स्वर एक साथ गूंजने लगे थे। जहाँ उदारवादी पुरुष समुदाय स्त्रियों की स्थितियां सुधारने

स्त्रियों की आजादी का पहला पाठ संयुक्त राज्य अमेरिका के मैसाच्यूएट्स राज्य में 1611 में वोट देने का अधिकार से शुरू हुआ। इसके लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ा था। मगर दुर्भाग्य यह रहा कि कुछ स्त्री विरोधी विचारकों की वजह से उनका यह मताधिकार इसी राज्य में 1780 में वापस ले लिया गया था। इन निण यों से दुनिया में स्त्रियों के समर्थन और विरोध के स्वर एक साथ गूंजने लगे थे। जहाँ उदारवादी पुरुष समुदाय स्त्रियों की स्थितियां सुधारने का प्रयास कर रहा था तो अनुदारवादी वर्ग उनके कदमों को पीछे खींच रहा था।

का प्रयास कर रहा था तो अनुदारवादी वर्ग उनके कदमों को पीछे खींच रहा था। स्त्रियों के अधिकार, मताधिकार, शिक्षा जैसे बुनियादी मुद्दों की शुरूआत से उन्हें संगठित करने की मांग उठी। किसी भी संगठन और संघर्ष को मूर्त रूप शिक्षा के पाठ से प्रारम्भ होता है। यह बात भारत में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के विकास के लिए तीन सूत्र देकर कही थी। शिक्षित हो, संगठित हो और संघर्ष करो। उन्होंने शिक्षित होने की बात पहले की थी। स्त्री मुक्ति के बारे में भी यही फार्मूला लागू होता है। वे शिक्षित होंगी तो संगठित भी होगी और अपने हकों के लिए संघर्ष भी कर सकतीं हैं। जब 1788 में फ्रांस के राजनीतिज्ञ कांडसैंड ने महिलाओं को शिक्षा देने और नौकरी प्रदान करने के साथ ही राजनीति में भी भाग लेने की मांग की थी। उसका असर अन्य देशों में भी दिखाई देने लगा था। यही कारण है कि पुनः संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1840 में दुक्रीशिया के नेतृत्व में 'ईक्वल राइट' यानी समान अधिकार संगठन की स्थापना करके श्वेत महिलाओं की तरह नीग्रों महिलाओं के लिए समान अधिकारों की जोरदार मांग की थी।

नारी मुक्ति या नारीवादी चिंतन पश्चिमी विचारधारा के शब्द भले हों। मगर पूरी दुनिया की स्त्रियाँ दोयम दर्जे का जीवन जीती रही हैं। अशिक्षा की मार सही, घरेलू हिंसा की शिकार रही। आर्थिक रूप से पराधीन रही। यह सत्य है इसे नकारा नहीं जा सकता। आज भी स्त्रियों की बड़ी आबादी खासकर दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की स्त्रियां परिवार, समाज में सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी हैं। यह बोध जिन स्त्री वर्ग ने पहले किया या उन्हें उनके समाज और देश ने कराया। उनमें ही पहले गुलामी से मुक्ति की छटपटाहट पैदा हुई और उन्हें आजादी भी मिली।

आज नारी मुक्ति से आशय एक वर्ग

देह मुक्ति से जोड़ कर देखता है परन्तु बीसवीं सदी के लगभग मध्य में 'सीमोन द बोउवार' स्त्री मुक्ति की मुख्य पैरोकार के रूप में उभरी थीं। दुनिया में उन्होंने अपना मुकाम बनाया था। जिसका दुनिया की उन सभी चेतनशील स्त्रियों पर प्रभाव पड़ा जो शिक्षित थी और जो स्त्री मुक्ति के सपने देखती थी। भारत की कुछ जागी हुए शिक्षित स्त्रियां उनके सिद्धान्त को अतिवादिता से भी जोड़ती थी। सीमोन दुनिया की औरतों से कहती थी कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है।' यह वह विचार था जो स्त्रीत्व के बोध से मुक्ति चाहता था। लेकिन इनके चिंतन में स्त्री को आत्मनिर्भर बनाना पहली शर्त थी। तभी वह अपनी मुक्ति की वास्तविक लड़ाई लड़ सकती हैं। उन्होंने एक बात स्त्री के बारे में कही थी जो सीधे-सीधे दलित-आदिवासी और पिछड़े वर्ग की स्त्रियों से जुड़ती है। वे कहती हैं "स्त्री अधीनस्थ जाति है। जाति का अर्थ है कि कोई उस जाति में उत्पन्न हुआ है और उससे बाहर नहीं जा सकता। जबकि सिद्धांततः एक व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में स्थानांतरित हो सकता है। लेकिन यदि आप औरत हैं तो कभी पुरुष नहीं बन सकती। औरत विशुद्ध रूप से एक जाति है, वर्ग नहीं। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से औरतों के साथ होने वाला व्यवहार उन्हें एक अधीनस्थ जाति के रूप में निर्मित करता है।" यहाँ स्त्री की स्थिति दलित जैसी है। यह अलग बात है कि भारत की कुछ स्त्रियां जिनमें मृदुला गर्ग, मनीषा आदि अपने को दलित की श्रेणी में रखने से सख्त परहेज करें। वे अपनी जगह एकदम ठीक हैं। सवर्ण स्त्रियां दलितों की श्रेणी में नहीं आ सकतीं क्योंकि वे स्वयं सवर्ण मानस लिए होती हैं। उनका आचरण दलितों के प्रति दलित स्त्रियों सहित वर्णगत भेदभाव से मंडित ही होता है। इस स्थिति से जो अपने को अलग करके देखती हैं। शायद उनकी कथनी और करनी में अंतर होता है। यहां ऊपर सीमोन के उस कथन की तरफ लौटते हैं जो उन्होंने स्त्री को एक अधीनस्थ जाति बताया है। उन्हीं की तरह डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी भारतीय हिंदू समाज के बारे में कहा था-**"हिंदू समाज एक मीनार है। एक-एक जाति इस मीनार का एक-एक तल है और एक दूसरे तल में जाने का कोई मार्ग नहीं है जो जिस तल में जन्मा है उसी तल (जाति में) मरता है।"**

भारतीय संदर्भ में नारी मुक्ति आन्दोलन को इसी नजरिये से देखने की जरूरत है। जिन स्त्रियों और दलित स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक शैक्षिक और राजनैतिक स्थितियां भी अपने समाज जसी ही हैं। माना कि दलित स्त्रियां भी अपने समाज में दोयम दर्जे का जीवन जीने को विवश हैं। उनकी वह लड़ाई अपने घर के भीतर जैसी ही है। उसके समाधान भी घर में ही मौजूद हैं। उसकी परूष से लड़ाई अलगाव की नहीं है बराबरी की है। परूष भी सिद्धान्तः उतने संकुचित मानसिकता के नहीं है जितने की सवर्ण परूष। मगर अपने समाज से बाहर निकलते ही उनके शोषण बहुपरतीय होने लगते हैं। दलित स्त्रियों को अपने घर के भीतर पितसृत्ता के विरूद्ध सघंर्ष करना है और साथ ही साथ उन्हें अपनी सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक राजनैतिक, ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्रों में अपने प्रतिनिधित्व की मांग भी उठानी होगी। वे अभी भी देश के विकसित क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति नगण्य बनी हुई है। दलित-आदिवासी स्त्रियां जीवन जीने के मूलभूत साधनों घर, पानी. बिजली, शिक्षा, रोजगार इत्यादि को भी प्राप्त नहीं कर पाई हैं।

यही कारण है कि दलित स्त्रियां अपनी जड़ें ज्योतिबा फूले और उनकी पत्नी सावित्री फूले से जोड़कर देखती हैं। उनके जन्म दिवस 10 जनवरी को दलित स्त्री मुक्ति दिवस के रूप में मनाना ज्यादा पसंद करती हैं। मगर हिंदुस्तान की अधिकांश सवर्ण बुद्धिजीवी स्त्रियां जातियों में बंटी हैं। जातियों से जुड़कर उनकी मुक्ति के द्वार खुलते हैं। दोनों की स्थितियां तभी तक समान हैं जब तक वे प्राकृतिक रूप से स्त्री हैं। वर्णीय और जाति प्रधान समाज उन्हें जातियों में बांट देता है। दलित स्त्रियों को अस्पृश्यता के प्रश्न उन्हें अलग कर देते हैं। भारत में स्त्री मुक्ति आन्दोलन के बारे में प्रसिद्ध कवयित्री अनामिका लिखती हैं –

"भारत में स्त्रीवादी आंदोलन के तीन चरण थे! उन्नीसवीं शताब्दी में पंडिता रमाबाई, ज्योतिबा फूले, सावित्री फूले, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने स्त्री-शिक्षा और स्वावलंबन की मुहिम का मार्ग प्रशस्त किया। कई ऐसी रूढ़ियां तोड़ते हुए जो स्त्री-जीवन, खासकर विधवाओं और अन्य एकाकी स्त्रियों का अंतरंग जीवन क्षत-विक्षत रखती थी।"

अनामिका जी ने स्त्री आंदोलन के तीन चरण बताए। दलित स्त्री चिंतक की ओर से इन्हीं में चौथा चरण बीसवीं शताब्दी में स्वामी अछूतानंद उनकी पत्नी दुर्गाबाई और डॉ. अम्बेडकर का 'हिंदू कोड बिल' के योगदान को जोड़ा जाना अनिवार्य है। इसी समय 1884 में 'सीमंतनी उपदेश' की अज्ञात एक हिंदू लेखिका ने हिंदू स्त्रियों की मुक्ति की लड़ाई उक्त पुस्तक के द्वारा लड़ी थी। इस पुस्तक की गंभीरता इस बात से समझी जा सकती है कि लेखिका को अपना नाम तक छिपाना पड़ा था। आज भी वह गुमनामी के अंधकार में है। मगर उसकी लेखनी अभी भी प्रासंगिक बनी हुई है। उसने हिंदू धर्म का ऐसा एक्सरा किया था। उसके भीतर का एक-एक सड़ा-गला अंग दिखाई देता है जो स्त्रियों के लिए नासूर बना हुआ है। इस पुस्तक की खोज डॉ. धर्मवीर ने 1988 में की थी मगर इसमें दलित स्त्री का कुछ भी नहीं है। इस दृष्टि से उनका श्रम गैरदलित स्त्रियों के पक्ष में चला गया है।

भारत में सभी वर्णो की स्त्रियों की मुक्ति की व्यवस्थित और कानूनी लड़ाई डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 'हिंदू कोड बिल' देकर लड़ी थी। इस बिल के तहत्

पुत्र के समान पुत्री को भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार देने की बात कही गई थी। विवाह और तलाक के अधिकारों की मांग भी थी। जिसे तत्कालीन संसद ने यह बिल पास नहीं होने दिया था। जिससे निराश होकर डॉ. अम्बेडकर ने कानून मंत्री पद से 10 अक्टूबर 1951 को इस्तीफा दे दिया था। इससे उन्हें बहुत दुख पहुँचा था। इस बिल का विरोध करने वाले हिंदू समाज के करपात्री जैसे साधू संत थे जो नहीं चाहते थे कि उनकी बेटियों को आर्थिक रूप से पिता की सम्पत्ति में से कानूनी हक मिले और उनकी स्थिति सुधरे। वे आजाद भारत में भी अछूतों की तरह स्त्रियों पर भी हिंदू वर्ण व्यवस्था के कानून को लादना चाहते थे। बाद में यह 'हिंदू कोड बिल' टुकड़ों में पास हुआ था। व्यावहारिक रूप से स्त्रियों को आज भी उनका हक नहीं मिलता है। अछूत स्त्रियों पर भी वही कानून लागू होता है। डॉ. धर्मवीर ने 'मेरी पत्नी और भेडिया' पुस्तक के द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम के विरोध की लड़ाई लड़ी है। वे दलित स्त्रियों सहित दलितों को इस अधिनियम से अलग रखने की पहल कर रहे हैं।

दलित स्त्रियों के बारे में एक बात कही जाती है कि उन्हें सवर्ण समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता मिली होती है। इस प्रश्न में यदि सच्चाई है तो इतनी सी है कि दलित समाज अपनी विधवाओं के साथ उतनी क्रूरता से पेश नहीं आता जितना हिंदू अपनी स्त्रियों के साथ आता है। दलित समाज में विधवा विवाह के बंधन भी नहीं थे। तलाक की सुविधा भी थी। उनकी अपनी जातीय पंचायत में पति-पत्नी के झगड़े हल हो जाते थे। हिंदू की तरह दलित स्त्रियों के समक्ष धर्म के नाम पर उन जैसी अनेक पाबंदियां नहीं थीं। इन खूबियों को स्वीकारते हुए एक संदेश यह जाता है कि ऐसी स्थिति में दलित लड़कियों को जिस समाज से विवाह एकदम नहीं करने चाहिए। क्योंकि जिस समाज में स्त्री गुलामी भरा जीवन जीने के लिए विवश हो तब वहां दलित लड़कियां विवाह करके क्या प्राप्त करेंगी ? दूसरी बात यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जब दलित किसी स्त्री को विधवा पुनर्विवाह करती है, तब वह अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के यह कदम नहीं उठाती है। वह उस विवाह के माध्यम से अपने जीवन जीने के विकल्प देखती है। उसका समाज इतना साधन सम्पन्न नहीं है कि आजीवन बेटी को घर बैठा कर पाल सके और न ही उसके समाज के पास शिक्षा के उन्नत साधन, जिससे वह अपनी बेटी को उसके पैरों पर खड़ा कर सके। दलित समाज में अभी भी यही संस्कृति व्यवहारित है। हिंदू समाज से अलग वातावरण में इस पुनर्विवाह में यदि सुख के कुछ क्षण दलित स्त्री को मिलते हैं तो दुखों का पहाड़ भी कम नहीं होता है। यहाँ एक उदाहरण के लिए हमारे पास श्यौराजसिंह 'बेचैन' की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' पर है उसमें लेखक की माँ का उदाहरण लिया जा सकता है। वह जब अपनी युवावस्था में विधवा हो जाती है। तब उनके मायके वालों ने उनका एक के बाद एक दो बार पुनर्विवाह किया। एक रामलाल नामक व्यक्ति से विवाह करते हैं। यहां यह बता देना जरूरी है कि स्त्रियों के इस तरह के पुनर्विवाह धूमधाम और रीति रिवाजों या किसी भी प्रकार की रस्मों से परे होते थे। गाँव मोहल्ले के पांच-छह लोग बात करके लड़की को बिठा देते हैं। इस तरह पुनर्विवाह को 'बिठा देना' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। इसमें विवाह की तरह घर में न रिश्तेदार जुड़ते हैं न भोज का प्रबंध होता है और न अन्य खुशी का वातावरण होता है। यह एक कार्य दुखद स्थिति में किया जाता है, जिसमें लड़की के मन में भी विवाह जैसी खुशी की उमंगें नहीं उमड़ती हैं। श्यौराज की माँ सूरजमुखी को भी दो बार पुनर्विवाह जैसी दुखद स्थितियों से गुजरना पड़ता था। दूसरे विवाह में रामलाल व्यक्ति ने जल्दी अपनी मंशा बता दी थी कि उसे स्त्री चाहिए उसके बच्चे नहीं। यह बात एक माँ को अत्यंत कष्टकारी होती है। सूरजमुखी ने तुरन्त वहां जाना उचित नहीं समझा। रामलाल गरीब व्यक्ति था। उसकी इतनी हैसियत नहीं थी कि अपनी पत्नी के साथ आने वाली उसकी संतानों को भी पाल सके।

इसके बाद सूरजमुखी का भिकारी नामक व्यक्ति से तीसरा विवाह होता है। मगर वहां भिकारी रामलाल की तरह सूरजमुखी के पूर्व पति के बच्चों को पालने से इंकार तो नहीं करता। मगर उन्हें अपनी औलाद भी नहीं मानता। उनके साथ सौतेला व्यवहार करता है। ऐसी स्थिति में सूरजमुखी अपने जीवन के सुखमय क्षणों को कैसे जिए? यह प्रश्न हमेशा उनके साथ बना रहा। इसकी सही अभिव्यक्ति तो सूरजमुखी ही कर सकतीं थीं। यदि इस समाज ने उन्हें पढ़ने-लिखने का अवसर दिया होता तो वह मैत्रेयी पुष्पा और उन जैसी अन्य बड़ी लेखिका बन सकती थी। क्योंकि उनका जीवन संवेदनाओं से भरा था। 'अस्थियों के अक्षर' में आये प्रसंग में श्यौराज की माँ अपने पति व देवर से जानवरों की तरह मार भी झेलती है तो कभी अपने बच्चों को इधर-उधर छोड़ कर उन्हें जल्दी काम सिखाने की चिंता करती है। इसी चिंता का परिणाम वह दिल्ली में अपने बहनोई के पास श्यौराज को कुछ काम सीखने के लिए छोड़ती है। अपनी बेटी माया का बाल विवाह कर देती है। माया भी बाल विधवा बनती है उसका भी पुनर्विवाह होता है मगर उसे भी पति का सुख नहीं मिलता। बस जीवन को बोझ की तरह जैसे-तैसे काटती हैं ये माँ बेटी। ये अशिक्षित और गरीब समाज की उन स्त्रियों के उदाहरण हैं जिन्हें समाज ने विवाह करने की आजादी तो दी परन्तु इनका जीवन किसी कैदी या गुलामों से कम कष्टकर नहीं बीता। ये काल्पनिक पात्र नहीं समाज के सच्चे पात्र हैं।

एक प्रश्न पितृसत्ता से जुड़ा हुआ

अक्सर उठाया जाता है कि दलित समाज में पितृसत्ता के लक्षण पाए जाते हैं। इसके उदाहरण के तौर पर कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' और सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में अनेक स्थान में दर्ज हुआ है कि लेखिका सुशीला टाकभौरे पति द्वारा बार-बार पीटी जाती हैं। उनके पति बहुत दिनों तक उनकी तनख्वाह अपने हाथ में रखते थे। हर वक्त उन पर किसी पराये व्यक्ति जैसा व्यवहार करते थे या अपराधी की तरह नियंत्रण रखते थे। मकान खरीदना है तो अपने नाम से लेना इत्यादि तमाम ऐसे प्रसंग यह साबित कर ही देते हैं कि उनके पति की मानसिकता पितृसत्तात्मकता से मुक्त नहीं है। इस तरह के अनेक प्रसंग दोहरा अभिशाप में भी आये हैं। इसी समस्या को रजनी तिलक ने अपनी आत्मकथात्मक कहानी 'बेस्ट ऑकरवाचौथ' और 'समरगाथा' में खुलासा किया है। 'अस्थियों के अक्षर' की सूरजमुखी यदि पति और देवर की क्रूरता से मार खाती हैं और वे पुरुष उसको पीटते हैं तो उनको पत्नी को पीटने की ताकत कहां से मिलती है।

यह पितृसत्तात्मक समाज उन्हें यह अधिकार देता है कि पत्नी को नियंत्रण में रखने का अधिकार पति को मिला हुआ है। यह दलित स्त्री दमन शोषण का एक पक्ष है। उसके प्रति वर्ण जाति प्रधान समाज भी उसके प्रति संवेदनशील नहीं है। घर से ज्यादा सवर्ण समाज उसको दोहरे तरह से नियंत्रण में रखना चाहता है। उस पर दलित जाति का ठप्पा लगा है। इसलिए वह गुलाम यानी कमजोर जाति की स्त्री है। उस पर नियंत्रण पाना पूरे दलित समाज पर नियंत्रण में रखने के समान है। आर्थिक शक्तियों को अपने नियंत्रण में करके धर्म और पुनर्जन्म का भय दिखा कर दलित समाज और दलित स्त्रियों का दमन जारी रहा है। यह सिलसिला अभी भी जारी है। दलित साहित्य की सभी विधाओं में स्त्रियों से जुड़ी यह समस्याएं चित्रित हुई हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि दलित स्त्री के समक्ष मात्र पितृसत्तामक सामाजिक व्यवस्था की ही समस्या नहीं है। उसकी मूल समस्या वर्ण-जाति व्यवस्था भी है। कौशल्या बैसंत्री हो, सुशील टाकभौरे, रजनी तिलक हो या फिर सूरजमुखी हो। उन सब और उन जैसी अनेक स्त्रियाँ शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ज्ञान-विज्ञान मीडिया में पिछड़ी हैं तो मात्र जाति व्यवस्था इसकी जिम्मेदार पहले है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गाँव' की छमिया उर्फ कबूतरी हो, या फिर कुसुम वियोगी की कहानी 'अंतिम बयान' की अतरो हो, या ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'जंगल की रानी' की कमली हो या फिर 'यह अंत नहीं की बिरमा होए कुसुम मेघवाल की कहानी की 'मंगली' की 'मंगली' हो जयप्रकाश कर्दम की 'सांग' की चंपा हो, सूरजपाल चौहान की 'आज की अंगूरी' हो, या फिर नैमिशराय की 'रीत' और उमेश कुमार की 'यह अंत नहीं' जैसी कहानियां यह बतातीं हैं कि दलित स्त्री होने के कारण इनके साथ सहज रूप से बलात्कार किया जाता है। पुलिस प्रशासन इनके प्रति असंवेदशील बने रहते हैं।

मीडिया सरकारी-गैरसरकारी संस्थाएं सब की सब असंवेदनशील रहती हैं। जैसे कुछ हुआ ही न हो। इसके अनेक उदाहरण मिल जाएंगे। इस संबंध में प्रधान न्यायाधीश अल्तमस कबीर की उस टिप्पणी का संदर्भ लिया जा सकता है जो उन्होंने 2013 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में कही थी-

''दिल्ली में 16 दिसम्बर 2013 को जो भी कुछ हुआ वह दुखद व गलत था लेकिन साथ ही वह एक मात्र घटना नहीं थी। इसे एक रूप में विशिष्ट स्थिति बना दिया गया। निर्भया या दामिनी नाम की लड़की जिसकी बर्बर हमले में मृत्यु हो गई वह एक मात्र घटना नहीं थी। अगले दिन समाचार पत्रों ने घटना के खिलाफ आक्रोश में चीख पुकार मचाई लेकिन उसी दिन 10 वर्षीय दलित लड़की से सामूहिक बलात्कार और उसके बाद उसे जला दिए जाने की घटना को अंदर के पन्ने पर सिर्फ पांच से दस लाइनों में जगह दी गई। उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा, दिल्ली सामूहिक बलात्कार पीड़िता के परिवार को सरकारों और विभिन्न निकायों ने भारी मुआवजा दिया। लेकिन उस छोटी दलित लड़की का क्या हुआ। क्या उसके परिवार को कुछ मिला। सी. जे. आई. ने कहा, हमें इन लोगों को पूर्ण नियंत्रण में लेने की आवश्यकता है ताकि वह दर्शाया जा सके कि महिलाओं से निपटने का यह तरीका नहीं है। कबीर ने कहा कि समाज को आदर्श बनने की आदत है।''

माननीय न्यायाधीश अल्तमस कबीर की यह मात्र टिप्पणी भर नहीं है। यह हमारे समाज की हकीकत है। हमें मालूम है। सच्चाई को स्वीकार करने की आदत नहीं है। न्यायाधीश द्वारा दिया गया उदाहरण भी एक अकेला या अपवाद नहीं है। 16 दिसम्बर की घटना के बाद और आज तक पूरे देश में इस तरह की घटनाएं घट रही हैं। दलित अबोध लड़कियां, जवान और वृद्ध स्त्रियां शिकार होती हैं मगर पुलिस उनकी रपट तक नहीं लिखती।

हिन्दी दलित साहित्य में स्त्री मुक्ति से जुड़े अन्य अनेक प्रश्न भी उभरते हैं। शिक्षा से जुड़ा ऐसा प्रश्न है जो उनके सामने अभी भी उन्हें दलित पुरुषों से भी पीछे रखे हुए है। जाति विषमतावादी समाज में दलितों आरै स्त्रियों पर आरै भी अशिक्षा की मार पड़ी। दलित स्त्री की मुक्ति के प्रश्न सीधे-सीधे शिक्षा से जुडते़ है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट में भारत की शिक्षा का सच सामने आया है ''दुनिया में सबसे ज्यादा अनपढ़ वयस्कों की आबादी हमारे देश में हौ संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोट ि में युवा देश माने जाने वाले भारत की यह भयावह तस्वीर सामने आई है। इसके मुताबिक हमारे देश में अनपढ़ वयस्कों की आबादी

28-7 करोड़ है यानि दुनिया के 37 फीसदी अनपढ़ वयस्क भारत में है।......यूनेस्को द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में सबसे अमीर युवतियों ने पहले ही वैश्विक स्तर की साक्षरता हासिल कर ली है, लेकिन सबसे गरीब युवतियों के लिए ऐसा कर पाना 2080 तक ही संभव हो सकता है।''

यूनेस्को की यह रिपोर्ट बतलाती है कि भारत में गरीब और अमीर स्त्रियां दो बड़े खेमों में रहती हों जिनमें गरीब स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। रिपोर्ट में 2080 तक भी स्थिति सुधरेगी ऐसा अनुमान लगाया गया ह,ै इसकी भी क्या गारंटी ह?ै क्योंकि आजादी को ठीक 66 साल बीत गए आरै ठीक 66 साल और इंतजार करने की बात रिपोर्ट में की गई है। सरकार की इस क्षेत्र में क्या योजनाएं हैं? वह कितनी गंभीर है ? सच्चाई तो यह है कि इस रिपोर्ट के आने के बाद भी सरकार की चिंता का एक समाचार तक नहीं आया। जबकि यह अत्यंत निराशाजनक और शमर्स ार करने वाले परिणाम हमारे सामने हैं।

पिछले दो से तीन दशकों में शिक्षा का निजीकरण जिस रफ्तार से बिना किसी सरकारी रोक-टोक के उल्टे बढ़ावा देकर हुआ है। उसका सबसे ज्यादा नुकसान गरीब दलितों, आदिवासियों के लोगों का हुआ है। उनमें भी स्त्रियों का हुआ ह।ै चिंता यह भी बनी हुई है कि केन्द्र आरै राज्य सरकारों का इधर ध्यान ही नहीं है।

अब एक सवाल यह है कि जिनको अमीर युवतियों में गिना गया वे किस जाति वर्ण की हैं और जिन्हें गरीब गिना गया वे किस जाति वर्ण की हैं? समाज में विकसित जातियों के चेहरों को देख कर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जिन्हें अमीर युवतियां कहा गया है वे दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की तो नहीं हैं क्योंकि जातियों के विकास यह दर्शा ही देते हैं। दूसरी तरफ जिन्हें गरीब कहा गया है। उनमें बड़ी आबादी दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की स्त्रियों की अधिक है। व्यावहारिक सच सबके सामने है। दलित साहित्य की रचनाओं में भी यही सच आ रहा है। हम यहां उदाहरण के लिए कुछ रचनाओं पर चर्चा करेंगे।

'शीतल के सपने' का उदाहरण दिया जा सकता है। कहानी की मुख्य पात्र शीतल दलित चमार जाति की लड़की है जो पढ़ना चाहती है मगर उसके पिता की मौत हो चुकी है। माँ निरक्षर और अल्पविकसित मस्तिष्क की है। उसके परिवार में आर्थिक उपार्जन का कोई निश्चित साधन नहीं है। उसके एक चचेरे चाचा जो दिल्ली में मास्टर हैं। कुछ दिन के लिए वे उसे अपने पास ले आते हैं। मगर वह भी ज्यादा दिन उसे अपने पास रख नहीं पाते। बच्ची शीतल पढ़ाई के प्रति रूचि रखती है। कुछ अक्षर सीखती है। वापस गाँव पहुंच कर वह स्कूल न जाकर छोटे बहन भाईयों को पालने के लिए बूढ़ी दादी के साथ मजदूरी करने जाती है। ऐसी स्थिति में उसकी पढ़ाई छूट जाती है। एक बूढ़ी दादी उसका सहारा थी। वह भी चल बसी है।

लेखक ने समाज से प्रश्न किया है कि ऐसी स्थिति में शीतल ने पढ़ाई के लिए जो सपने देखे थे उनका क्या होगा? या उस जैसी बच्चियों को शिक्षा कैसे मिलेगी ? इसी तरह स्त्री शिक्षा से जुड़ी एक कहानी सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' है। उसकी मुख्य पात्रा सिलिया है। वह भंगी समाज की बच्ची है। जाति विषमतावादी समाज में पढ़ाई करने के लिए उसे अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। मगर वह जैसे-तैसे हाई स्कूल की परीक्षा पास करती है और आगे की पढ़ाई करना चाहती है। मगर उसका परिवार विवाह कर देना चाहता है। क्योंकि उसके परिवार की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि उसकी पढ़ाई जारी रखी जाए और न समाज में ऐसा वातावरण है कि वह भंगी जाति की बच्ची को पढ़ते देख सके। सिलिया अपने समाज के प्रति बचपन से ही गंभीर है। वह समाज में फैली जाति व्यवस्था को समाप्त करने के स्वप्न देखती मन ही मन दृढ़ निश्चय करती है। इस तरह यह दोनों कहानियां समाज में दलित बच्चियों की शिक्षा में आ रही रूकावटों को दर्शाती है। यहां एक और कहानी कौशल पवार की 'वर्दी' का भी उदाहरण दिया जा सकता है।

कहानी का परिवेश हरियाणा का है। यह कहानी चूहड़ा जाति की छोटी बच्ची नेहा की है जो सरकारी स्कूल में पढ़ती है। मगर वहां उसे सब बच्चों से अलग नीले रंग की वर्दी पहनने को दी जाती है। जबकि दूसरे सामान्य वर्ग के बच्चे सफेद या हल्के गुलाबी रंग की वर्दी पहनते हैं। नेहा की पहचान अलग हो जाती है। साथी बच्चे उसे नाम से कम चूहड़ा कह कर अधिक पुकारते हैं। वह घर में इसकी शिकायत करती है। मुझे नहीं पहननी है ये वर्दी। मगर उसके माँ-बाप गरीब दूसरी वर्दी नहीं बना पाते। कहानी में संवेदनशीलता उस समय आती है जब नेहा के पिता मुर्दा पर पड़ा हुआ सफेद कफन उठा कर ले आते हैं। जिससे उसकी माँ दुखी होती है। नेहा माँ-पिता के संवादों को चुपके से सुनती है और बाद में वह उस कफन के कपड़े को उठा कर ले जाती है वर्दी सिलवाने के लिए। यह कहानी कहीं न कहीं यह संदेश देती है कि जातीय दश इतने गहरे होते हैं। उससे मुक्त होने के लिए व्यक्ति किसी भी हद तक मजबूर हो जाता है। हमारे समाज में मृतक व्यक्ति के कपड़ों और कफन को इस्तेमाल करने का मानस नहीं है। मगर बहिष्कृत जातियों को मजबूरी में ऐसी त्याज्य वस्तुओं का इस्तेमाल करना पड़ता है जिसे सभ्य सभ्रांत समाज त्याग देता है। वह अपनी गरीबी से उतना दुखी नहीं होता जितना जाति के अपमान से होता है। □

(लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय के कमला नेहरू कॉलेज में सहायक प्राध्यापिक हैं।)

विद्रोही व्यक्तित्व व सशक्त महिला मीरा बाई

■ डॉ. निशा सत्यजीत

विद्रोह कौन करता है ? जिसके पास शक्ति हो, जिसमें जुल्म के खिलाफ लड़ने का जज्बा हो, जिसमें जमाने की खिलाफत झेलने का जुनून व शक्ति हो। सबकी रूसवाई को सिर पर जो ढोता चले व अकेला सतत् चलता रहे। वही व्यक्ति विद्रोह कर सकता है। दो तरह के विद्रोही होते हैं एक वे जो जुल्म सहने की सभी हदें पार हो जाने पर विद्रोह करते हैं। दूसरे वे जो यह जानकर ही कि ये गलत है, अन्याय है, इसका विरोध होना चाहिए, तब विद्रोह करते हैं। क्योंकि अन्याय सहने वाला भी जुल्म करने वाले के समान अपराधी होता है। पहली अवस्था में विद्रोह करने वाले साधारणजन होते हैं। ये स्वयं के अत्याचार मुक्ति तक ही सीमित रहते हैं। दूसरे प्रकार के विद्रोही महान होते हैं, जो केवल समाज कल्याण के लिए विद्रोह करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो कभी भी जुल्म के खिलाफ नहीं जाते व तिलतिल कर अपना जीवन गुजार देते हैं।

समाज द्वारा निर्धारित नियम एक आम औरत के लिए सदैव अभेद व अनउल्लंघनीय रहे हैं। उनके खिलाफ तो कोई मीरा जैसी विरली व अदम्य साहसी महिला ही जा सकती है। जिसको विरोध व विद्रोह की दीवानगी सी छाई हो। जिसे तिल-तिलकर जीना गंवारा ना हो। वो दब्बू औरत नहीं, जिसको असल भारतीय संस्कृति की खास धरोहर कहकर सराहा जाता रहा है।

पता है, मीरा को आज भी क्यूं जाना जाता है? क्योंकि उसने उन निर्धारित रास्तों पर चलना नहीं स्वीकारा, जो हर एक औरत के लिए बनाए गये थे। उसने अपने रास्ते खुद बनाए व उन पर चली। बने बनाए रास्तों पर वो लोग चला करते हैं, जिनमें अपनी राह बना पाने की शक्ति नहीं होती। मीरा ने अपने बनाए रास्तों पर चलकर सशक्त महिला होने का परिचय दिया। और ऐसे राजवंशी परिवार में व घोर सामन्ती समाज व्यवस्था का पूरे देश में बोलबाला था।

मीरा को कृष्ण भक्ति के रूप में ही जाना-पहचाना जाता है। वो भक्त बनी, जबकि हिंदू शास्त्रानुसार भक्ति का रास्ता औरत के लिए प्रतिबंधित था। उसके लिए चूल्हा-चौका का क्षेत्र व घर-परिवार की सेवा ही निर्धारित थी। पुरुष भक्ति करने के लिए व मोक्ष पाने के लिए घर-बार त्याग सकता था, लेकिन औरत नहीं, क्योंकि औरत नरक का द्वार होती है। उसका मोक्ष हो ही नहीं सकता। ऐसा दुष्प्रचार करके उसे भक्ति क्षेत्र से निष्कासित कर दिया गया था।

जब जातीय भेदभाव व वर्ण-व्यवस्था अपने चरम पर थी। तब सवर्ण व शूद्र वर्णों के बीच ऐसी खाई थी जिसे पाटने को अच्छे-अच्छे धुरंधर भी हिम्मत नहीं जुटा पाए थे। ऐसे समय में मीरा ने राजपूत जाति की महिला होकर संत रविदास को गुरू बनाकर, वर्ण-व्यवस्था पर तेज प्रहार करके, ब्राह्मणवाद की चूले हिला दी थीं।

उस समय विधवा औरत के लिए भारतीय समाज ने ऐसे कठोर नियम बना रखे थे कि उनकी अनुपालना करना तिल-तिलकर मरने से कहीं बदतर था। विधवा के लिए साज श्रृंगार समाज द्वारा प्रतिबंधित थे और आज भी हैं। दुनियां से एक आदमी चला जाता है, विधवा औरत का तो जहां चला जाता है। मीरा ने कृष्ण को माध्यम बनाकर विधवा श्रृंगार करें-की आवाज उठाई। तत्कालीन सोच के अनुसार नाचना-गाना कला ना होकर निम्न वर्ग के

लोगों का पेशा था। जिस कारण से इन्हें हेय माना जाता था। कुलीन वर्ग के लोगों को नाचने व गाने की वर्जना थी। कुलीन स्त्री के लिए नाचना-गाना घोर प्रतिबंधित था। मीरा ने पांवों में घुंघरू बांधकर बार-बार नाच-गाकर उस वर्जना को तोड़ा। उस दबंग महिला ने सबके सामने ताल ठोंककर समाज को कह दिया-

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।

एक कुलीन घराने की बेटी, बहुएं वर्जनाओं को तोड़े व घर-परिवार, समाज के लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रह जाते, यह कैसे हो सकता था? यह ठकुराई आन-बान, ज्ञान व पितृसत्तात्मक उसूलों के खिलाफ थी। सास ने उसको कुलनाशनी भी कहा। विभिन्न रिश्तेदारों ने अनेक तरीकों से उसको रोका। लेकिन मीरा ने सबके सामने कह दिया-

बरजी री मैं स्याम बिन नां रहया।

जिस समय पर पुरुषों की परछाई स्पर्श तक निषेध थी। उस समय वो साधुजनों के साथ मंडली बनाकर रहती थी। एक विधवा की कामेच्छा की अभिव्यक्ति के लिए वह कहती है-

मुख पीव पीव वाणी हो।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी,
उण बिन पल न रहाऊँ॥
गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम,
देखत रूप लुभाऊँ॥
या
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ,
भोर भये उठि आऊँ॥
रैण दिणा वाके संग खेलू,
ज्यूं- ज्यूं वाहि रिझाऊँ॥

जबकि सभ्य समाज ने विधवाओं के उपरोक्त पहलुओं के प्रति सदैव अपने आंख-नाक व कान बंद रखे। मीरा द्वारा विधवा वर्ग की मांगों का उठाया जाना। उसके अदम्य साहस का परिचायक है। जिस राजपूत घराने की वो बहू थी, उसके लिए यह सब असहनीय था। वैसे इस मामले में सदियां बीत जाने के बावजूद आज भी लोगों की सोच में कोई बहुत फर्क नहीं आया है। आज भी माना जाता है कि बेटा ही वंश या नाम चलाता है। लेकिन निपुति व निरबंशिया मीरा ने अमरता पाकर उपरोक्त कथन को मिथ्या साबित कर दिया। लेखन में पुरुषों का एकाधिकार था। कलम थाम मीरा ने उनके एकाधिकार को समाप्त किया। स्त्रियों के अन्याय व अत्याचार संबंधी वो बातें कह डाली जो आज तक नहीं कही गई थीं। ऐसा करके मीरा ने पितृसत्तात्मक समाज को झकझोर दिया। समाज ने मीरा का विरोध किया। इस पर मीरा कहती है-

जगरा बोल सहया।

उसकी बुलंद आवाज को दबाए जाने पर मीरा इतनी विद्रोही हुई की वहाँ रहना तक त्याग दिया। अकेली ही रहने का निश्चय कर लिया। ऐसा भी नहीं कि चुपचाप चल पड़ी हो, रात में निकल पड़ी हो या आंखों में धूल झोंक कर आई हो। मीरा ने सबके सामने बेझिझक कह डाला-

नहीं भावै थारो देशड़लो रंगरूडो।
.... हम सब त्यागा।

ऐसा मीरा ने तब किया था। जब उसका साथ देने के लिए ना तो कोई कानून या संवैधानिक व्यवस्था थी, ना महिला मानवाधिकार, ना ही कोई महिला संगठन व ना ही मीडिया, जो उसके इंसाफ के लिए हुक्मरानों से दुहाई मांगता। उपरोक्त सभी प्रावधान होते हुए भी 21वीं सदी की महिला, ऐसा साहस नहीं कर पाती है जो मीरा ने दिखाया, जिससे वह सशक्त महिला का साक्षात् प्रमाण बनी। □

(लेखिका हिन्दी विभाग श्री कृष्ण राजकीय महाविद्यालय कंवाली, रेवाड़ी में प्राध्यापिक हैं)

"हम इज्जत के लिए संघर्ष करते हैं। हम अपने इस देश में सम्मान के साथ जीना चाहते हैं। इज्जत के साथ रहना प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, इसके लिए हम जो भी त्याग करें बहुत कम है।"

-डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

कहानी

नुक्ता

■ संदीप मील

बड़ के पीछे वाले हिस्से की तरफ जो एक पुराना सा राजाशाही महल दिख रहा है, उसके सामने बोर्ड पर 'तहसील कार्यालय' लिखा हुआ है। 1947 के बाद कहा जाता है कि एक 'भारत' नाम का देश आजाद हुआ था और उसी का प्रशासन चलाने के लिये उस देश में जनता के कई सेवक ऐसे कार्यालयों में जनसेवा का कार्य वर्ण-व्यवस्था के आधार पर करते हैं। कार्यालय के अंदर घुसते ही बायीं ओर एक कमरा था, जिस पर एक काली प्लेट 'तहसीलदार' लिखकर लटकाई गई थी। इस 'तहसीलदार' शब्द का अर्थ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँव में उन नोटों से लगाया जाता है जिसको भारत सरकार की मान्यता प्राप्त है। कमरे के अंदर एक कुर्सी रखी हुई थी जो रजवाड़ों के राजसिंहासन से तुलनात्मक रूप से किसी भी स्तर पर कम नहीं थी, मगर कुर्सी का एक टूटा हुआ हत्था बता रहा था कि अब राजतंत्र की जगह लोकतंत्र नाम की चिड़िया ने ले ली है जो एक टूटे हुए पंख के बावजूद भी उड़ने की कोशिश कर रही है। दीवार पर लटकी हुई गांधी की तस्वीर गर्द के कारण धुंधली हो गई थी और लग रहा था कि गांधी का बदन अब नंगा नहीं रहा है।

पिछले दो-तीन साल से इस इलाके में एक बहुत बड़ा परिवर्तन देखने को मिला है। जितने भी सरकारी महकमे थे उनमें एक विशेष मौसम आया। इस मौसम के कारण तबादलों के द्वारा यहां पर शर्मा, मिश्रा, त्रिपाठी, पांडेय आदि लोगों की भरमार हो गई है। इस मौसम का एक खास कारण लोग बताते हैं कि यहां के विधायक जोशी हैं, जिनकी पहुंच मौसम विभाग से लेकर मुख्यमंत्री के घर पूजा पाठ कराने तक है। इसी मौसमी हलचल के दौरान तहसीलदार मनोहर चोटिया का तबादला इस शहर में हुआ है। इनकी चोटी घोड़ी की पूंछ से भी लम्बी है, जिनके कारण ब्राह्मण इन्हें बुद्धिमान मानते हैं जो किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त के सामने पल भर टिकने की औकात नहीं रखता।

मनोहर जोशी के दैनिक क्रियाकर्म बड़े ही सुव्यवस्थित थे, अगर कोई कुएं के बीच में लटक जाये और रस्सी टूटने वाली हो तो भी वे पूजा-पाठ से नहीं उठेंगे। माथे पर तीन तिलक लगाकर जब जोशी रिश्वत बटोरते हैं तो चेले-चपाटे उनकी मानसरोवर की यात्रा का प्लान और बजट बखानते रहते हैं।

वे आजकल बहुत उदास रहते हैं, जिसकी वजह उनका दोस्त घनश्याम है। वैसे तो घनश्याम को कुछ भी नहीं हुआ है, वह एकदम तंदरुस्त है। गाँव में पूजा पाठ का धंधा ठीक-ठाक चल रहा है। हर दिन कोई काम धाम मिल जाता, जिससे उनके घर की गाड़ी बिना तेल के चल जाती है।

दरअसल, जोशी की बीमारी यह थी कि घनश्याम का इकलौता लड़का पंकज इस बार तीसरी बार मैट्रिक की परीक्षा दी और उसमें पास हो गया। अब इस वाकयात में न तो पंकज की गलती थी और न ही घनश्याम की। असल समस्या यह थी कि सोनियोग्राफी की मशीन ने उस इलाके में लड़कियों की पैदाइश पर पाबंदी लगा दी थी और इसी कारण लिंग असंतुलन इतना बढ़ गया था कि खुद घनश्याम के गाँव में 117 जवान लड़कों का टोला कुत्ते मारता घूमता है। पंकज की शादी करने के लिये भी घनश्याम ने तमाम रिश्तेदारों और घर वालों को खंगाल लिया, लेकिन जब कहीं भी मामला सेट नहीं हुआ तो मनोहर जोशी के सर पर डाल दिया।

घनश्याम ने कहा, "अब आप ही कुछ कर सकते हैं, आपकी भाभी तो इसी चिंता में मरी जा रही है।"

जब सवाल भाभी का आया तो अपनी चोटो की गांठ खोलकर जोशी बोले, "जब तक तेरे बेटे के हाथ पीलक नहीं करवा देता, तब तक इस चोटी को खुली की खुली..।"

एक वह दिन था और एक आज का दिन है। जोशी का हाजमा इतना खराब हो गया कि हर सुबह पूजा के बाद वे भगवान से एक लड़की मांगते (अपने लिये नहीं पंकज के लिये)। अफसोस की बात है कि तीन महिने तक भगवान ने जोशी की दरख्वास्त पर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन जोशी को पूरा यकीन था कि एक दिन जरूर कोई लड़की उसकी झोली में आयेगी और वे उसे सही सलामत पंकज के हवाले कर देगा।

मुझे पूरा याद है कि मई का महिना था। शायद सुबह के 7.30 बजे होंगे, जोशी जोश के साथ पूजा से उठे और सीधे घनश्याम के घर गये। किसी को कुछ पता भी नहीं चल पाया। आज जोशी को झोली में वजन लगने लगा। हां, आज उन्हें एक नुक्ता मिल गया था।

तहसील कार्यालय में क्लर्क की एकपोस्ट कई दिनों से खाली पड़ी थी और आज पूजा के दौरान जोशी को लगा कि उस पोस्ट पर पंकज को होना चाहिए। ले

देकर एक ही दिक्कत थी, सरकारी नियमों के अनुसार वह पोस्ट रिजर्वेशन के अधीन आती थी। यहीं पर घनश्याम का ब्राह्मण होना उसे बुरा लगा था। उन्हें अपनी चोटी और बुद्धिमत्ता पर इतना भरोसा था कि कोई न कोई रास्ता जरूर निकाल लेंगे। अगर पंकज को नौकरी मिल जाये तो वह एक क्या, पांच-पांच शादी करवा देगा।

"कोई तो उपाय निकालना ही पड़ेगा।" इसी बड़बड़ाहट के साथ वह अपने चेम्बर से बरामदे में सात चक्कर लगा चुका था। एक के बाद एक आइडिया उनके दिमाग में आता और वह उन्हें तुरंत रिजेक्ट कर देता क्योंकि आज उसे किसी ठांसू आइडिये की जरूरत थी, जो उस पोस्ट को पंकज को दे सके।

जब दिमाग के औजार-पाती ने काम करना बंद कर दिया तो चैम्बर में कुर्सी पर आकर बैठ गया। चपरासी से पानी का गिलास मंगवाकर पिया और ठंडे दिमाग से सोचने लगा। चपरासी के बाहर जाते ही उसने एक मोटी-सी माँ की गाली सरकार को दी, जो सम्भवत: सरकार की आरक्षण नीति पर एक बहुत बड़ा हमला थी।

'सरकार' इस शब्द का ख्याल आते ही जोशी ने सोचना शुरू कर दिया कि आखिर सरकार को देखा किसने है? अब उसने दूसरा नुक्ता भी पकड़ लिया था। तुरन्त चपरासी को बुलाकर एक खाली जाति प्रमाण-पत्र का फार्म मंगवाया। बेचारा चपरासी दौड़ा-दौड़ा गया और 5 रूपये का एक फार्म लेकर आया। जोशी चपरासी से बोले, "नाम और पते को छोड़कर सारा फार्म भरवा लो और मेरा नाम लेकर बाबू से रजिस्टर में चढ़वाकर ले आओ।"

जब तहसीलदार का हुक्म हो तो बाबू-साबू की क्या औकात ? तीन मिनट में बिना नाम पते का जाति प्रमाण-पत्र बनकर तैयार हो गया, जिसे खुद जोशी कई दिनों तक लटकाये रखता है।

चपरासी प्रमाण-पत्र को तहसीलदार की मेज पर रखकर चला गया। क्योंकि साहब गुसलखाने में दिमाग लड़ा रहे थे। लाल रुमाल से हाथ पौंछकर जब वह बाहर आया तो गांधी छाप चश्मे की नजर प्रमाण-पत्र पर पड़ी। उसे ग्लानि तो बहुत हुई मगर पल भर बाद उन्हें अपनी बौद्धिकता का अहसास हुआ और नाम की जगह 'पंकज पुत्र घनश्याम' भरकर चोटी पर हाथ फेरा। फिर 5 बजे तक का समय बहुत ही मुश्किल से गुजरा, जिसमें उसे कई बार घनश्याम की बीवी की याद आयी।

हल्की-हल्की हवा चल रही थी। रेत की रफ्तार बता रही थी कि वह कभी भी आंधी का रूप ले सकती है। लेकिन आज आंधी तो क्या तूफान भी जोशी को घनश्याम के घर जाने से नहीं रोक सकता था। वह पंकज की नौकरी की खुश खबरी देकर भाभी के हाथ से लडडू खाना चाहता था। जोशी तेज कदमों से घनश्याम के घर पहुंचा तो घर पर केवल तीन ही लोग थे, मतलब कोई बाहर वाला नहीं था।

"नमस्ते, भाभी।" अदांज ही खुशनुमा था।

"नमस्ते।"

देवकी वैसे भी जोशी से ज्यादा बात नहीं करती थी।

घनश्याम अन्दर से कुर्सी ले आया, "बैठिये।"

कुर्सी पर बैठकर वह कुछ देर चुप रहा फिर बोला, "आज भाभी उदास-उदास क्यों हैं ?"

देवकी की बजाय जवाब घनश्याम ने दिया,"अब क्या बतायें, पंकज की शादी को लेकर चिंता रहती है। किसी औरत ने कुछ बोल दिया होगा।"

जोशी ने मामले की गंम्भीरता को समझते हुए कहा, "बस! इतनी-सी बात की खातिर भाभी के चेहरे पर खिंचाव आ गया। भाई, मैं तो नौकरी दिला सकता था, सो दिला दी। कल से भेज देना पंकज को डयूटी पर।"

इसके बाद घर व गाँव में पंकज को लेकर जो प्रशंसा के पुल बांधे गये, उनको मैं कहानी में नहीं लिख सकता क्योंकि उस प्रशंसा में मुझे हमेशा एक बनावट नजर आती है।

अब सब कुछ बदल गया था। पंकज की शादी बड़ी धूमधाम से हुई और जोशी ने भी चोटी बांधना शुरु कर दिया था। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था कि एक दिन अचानक लोगों ने देखा कि जोशी की चोटी उखड़ी हुई है। □

(लेखक युवा कहानीकार हैं)

"जहाँ सहनशीलता की सीमा खत्म हो जाती है, वहाँ क्रान्ति का उदय होता है"

-डॉ. बी.आर. अम्बेडकर

कविताएं

मेरे शब्द

जानता हूँ
मेरे शब्द तुम्हें
हंसा नहीं सकते
तुम्हारा गम हर नहीं सकते
तुम्हारे साथ गुनगना नहीं सकते
मेरे शब्द
तुम्हें, मीठी लोरियां देकर
सुला नहीं सकते।
मेरे शब्द –
बिहारी या देव की भांति
तुम्हारी राधा का श्रृंगार-बोध नहीं हो सकते
कोरे आडम्बर भी नहीं हो सकते
गढ़े गए जिनसे तुम्हारे / प्रपंच भरे अनेक भगवान
और देवी-देवताएं।
मेरे शब्द
इतने चालाक और धूर्त नहीं हो सकते
स्वार्थों के लिए जिनसे / खंडित कर दी
उन्होंने –
पूरी मानवता / बो दिए / भविष्य के लिए
हजारों जहरीले कैक्टस
चारों ओर।
मेरे शब्द
अन्याय के खिलाफ
लड़ने के लिए खड़ा कर सकें तुम्हें
जहरीले कैक्टसों को जड़ से उखाड़ने के लिए
तनिक भी काम आ सकें
मैं, सार्थक समझूंगा
अपने शब्द।

राहें

मेरे पास
महल थे, पुर थे
अपनी अस्मिता थी
कला और भाषा थी
असल में मैं ही
पुरोहित था, बणिज था
सात समन्दर पार सहित /
दुनिया भर में
मेरा कारोबार था
तुम, रेगिस्तान /
जंगल-जंगल भटकते
कबाइली।
तुमने
ऐसा क्या किया
मेरे धन-धरती से लेकर
शास्त्रों तक तुम्हारा कब्जा हो गया ?
मेरे पास उनके, बिखरे अवशेष
भी नहीं।
मैंने, जाना इसका राज
सभी कुछ थे मेरे पास, सिवाय
तुम्हारी मक्कारी, कपट और
आदमी से आदमी की
नफरत के।
अब मैं ही
मुक्त करूंगा तुमसे
अपनी मिट्टी, अपनी विरासत
सारे शब्द-अर्थ / क्योंकि,
मैंने पहचान लिया है
अपने पूर्वजों की कुर्बानी का रंग
जिनसे सने हैं तुम्हारे
मैले हाथ। □

–सुदेश तनवर
नई दिल्ली

बाबासाहेब का दर्द

कल रात मेरे सपने में बाबासाहेब आये।
बोले कुछ नहीं बस रो रहे थे।
शायद ! यही कह रहे थे कि
मुझे लोगों ने दलितों का मसीहा कहा
परन्तु मेरे अपनों ने भुला दिया
भूल गये मेरे त्याग और संघर्ष को वो लोग
जिनके लिए मैं ताउम्र लड़ता रहा।
मंदिरों की पूजा न पानी का अधिकार था
नफरत घृणा भरी थी दिलों में नहीं कहीं प्यार था।
गांधी ने पूछा था मुझ से क्या तुम आजादी नहीं चाहते
मैंने कहा आजादी का पहले मतलब बता दो।
तुम तो गुलाम होकर भी आजाद हो।
हम आजाद होकर भी गुलाम होंगे।
आजादी का मैं पक्षधर हूँ पर मुझे मेरा समाज प्यारा है
जिसको तुम लोगों ने सदियों से दुलारा है।
संगठित हो जाओ वरना अलग-थलग कर जाएंगे।
और उठो करो आवाज बुलन्द भारत बदलना होगा।
हर कुर्सी तुम्हारी होगी बस तुम्हें 'राज' बदलना होगा।
इन अन्धेरे घरों में कोई चिराग नहीं जल पाएगा।
और जब-जब जरूरत पड़ेगी मेरी मैं आता रहूंगा।
शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो
यही दोहराता रहूंगा। □

–बिजेन्द्र सिंह रंगा
सोनीपत (हरियाणा)

रचनाएं आमंत्रित हैं

सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका सामाजिक न्याय संदेश में रचनाएं आमंत्रित हैं शोधपरक गंभीर व विश्लेषणात्मक लेख, कविताएं, कहानियां, दलित, आदिवासी एवं स्त्री विमर्श पर केन्द्रित सामग्री भेजें। रचनाओं के मौलिक, अप्रसारित व अप्रकाशित होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें। रचना की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें। प्रकाशित होने वाली रचनाओं को वापस भेजने की व्यवस्था ही है। सामाजिक न्याय संदेश के आगामी अंक निम्न विषयों पर केन्द्रित हैं, रचनाकारों लेखकों से आग्रह है कि अपनी रचनाएं हमें शीघ्र भेजें:–

–सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान 15, जनपथ नई दिल्ली–110001
टेली फैक्स : 011–23320588 मोबाईल : 07503210124
ई मेल: hilsayans@gmail.com

2014 के आगामी अंक के विषय

- मई : पंचशील (14 मई बुद्ध पूर्णिमा)
- जून : कबीर एवं सामाजिक न्याय (13 जून)

बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नाम संदेश

■ देवी दयाल

बाबा! आपके जाने के बाद पिछले 58 सालों में ज़माना बिल्कुल बदल गया है। भारत बदल चुका है। आज़ादी के वक्त का संघर्ष, दलितों और शोषितों की लड़ाई की लम्बी कहानी और अन्दाज़ अब केवल इतिहास की किताबों में कहानी के रूप में ही बचे हैं। गरीबों, वंचितों, दलितों, उपेक्षितों, अछूतों, आदिवासियों, महिलाओं और मजदूरों के अधिकारों और तरक्की की जो लड़ाई आपने लड़ी, अब उसे आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं है। भीड़ और ज़माने तथा विरोधियों की कटु आलोचनाओं के बीच अपने मिशन में दृढ़ आपने मानवता के उद्धार के लिए कठिन संघर्ष किया। अब तो उस कारवां को आगे बढ़ाने वाला कोई है ही नहीं। आपने कारवां को जिस जगह छोड़ा था, वह बिखर गया है। आत्म-सम्मान और आत्म-विकास की जो लड़ाई आप लड़ रहे थे, उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। दलितों के लिए आपने जो सुविधायें दिलाई, उनकी सुरक्षा और तरक्की के लिए जो कानून बनाये, आरक्षण के लिए जो प्रावधान किया, उससे कई लोग तो आगे बढ़ गये, लेकिन वे अपने बहुसंख्यक भाई-बहनों को भूल गये, जो अभी भी गरीबी, गुलामी और मानवाधिकारों से वंचित, निराशा की गर्त में पड़े हुए हैं। आपने सोचा था कि आरक्षण के द्वारा जो दलित अच्छी नौकरियों में पहुँचेंगे, असेम्बली और पार्लियामेंट में पहुँचेंगे, वे दलितों और वंचितों के अधिकारों की लड़ाई लड़ेंगे, समाज के लिए प्रेरणा और आदर्श का काम करेंगे, किन्तु सब कुछ उलट हो गया। वे तो केवल अपनी ही तरक्की में लग गए और समाज को भूल गये।

आप भारत के सभी लोगों को आत्म-उन्नति का बराबर और पूर्ण अधिकार देना चाहते थे और एक सुखी और समृद्ध समाज चाहते थे। देश के लम्बे इतिहास से उपजी अच्छाइयों और चुनौतियों तथा आज़ादी की लड़ाई में बुने गये सपनों को मूर्त रूप देने के लिए सभी देशभक्तों और दूरदर्शियों के सहयोग से आपने भारत के संविधान में वह सब कुछ लिख दिया जिससे एक महान मानव और महान समाज बन सके। प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति-निर्देशक तत्व और संविधान के अन्य विभिन्न अध्यायों में आपने सब कुछ विस्तार से इसलिए लिख दिया, जिससे भारत की आने वाली पीढ़ियाँ और देश के नेता भूल न जायें कि उन्हें किधर जाना है और क्या करना है। अफसोस कि पूर्वाग्रह, जड़ता और स्वार्थ की जकड़ ने नेताओं को सब कुछ भुला दिया और वह फिर शोषणकारी, पूँजीवादी, भोगवादी, स्वार्थी और निम्न सोच के गुलाम हो गये। इन नेताओं ने अब देश को ऐसे अंधकार और भंवर में लाकर खड़ा कर दिया है कि मुक्ति का कोई रास्ता दिखायी नहीं देता। अब तो केवल विघटन, संघर्ष, स्वार्थ, बेईमानी, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, जातिवाद, गुंडागर्दी, आपराधिकता और विलासिता का लिबास ही हमारी पहचान बन गये हैं। बाबा! अब ज़रूरत है फिर से आप आ जाओ और इंसाफ, बराबरी और इज्ज़त की जंग को एक नये तरीके से लड़ने की राह दिखाओ।

आपने संविधान में सर्वप्रथम मानव गरिमा को स्थान दिया। दलित उत्पीड़न, गंदी बस्तियों और नालों के किनारे बदबूदार हवा में जीते हुए इंसान, स्त्रियों का शोषण, बलात्कार और सब तरह के मानवाधिकारों का हनन-यही तो सब तरफ फैले हैं। कानून तो बने हैं लेकिन उनका पालन कराने वाला कोई नहीं। भक्षक रक्षक कैसे हो सकते हैं? प्रशासन, पुलिस और सभी एनफोर्समेंट एजेंसियाँ इस बात में लगी रहती हैं कि कैसे मानवता का शोषण होता रहे और वह लीपापोती कर अपने कर्तव्यों का ढिंढोरा पीटते रहें। स्थिति और अवसर की समानता का तो मज़ाक ही उड़ रहा है। धन्ना-सेठों, राजनेताओं और बड़े अफसरों तथा बाहुबलियों के सामने साधारण इंसान की क्या बिसात! अवसर की समानता तो ढूंढे से भी नहीं मिलेगी। सरकारी नौकरियाँ विज्ञापन और सेलेक्शन के माध्यम से तो दी जातीं है किन्तु भ्रष्टाचार, धर्म और जाति के पूर्वाग्रह, और पर्सनल प्रेजुडिसिस के कारण कुछ ही व्यक्तियों को न्याय मिल

पाता है, बाकी अन्याय के शिकार होते हैं। प्राइवेट सेक्टर में तो अवसर की समानता का प्रश्न ही नहीं। मालिक और मैनेजर अपने रिश्तेदारों, अपनी जाति के लोगों, जान-पहचान के लोगों और पैसे के दम पर एप्रोच रखने वाले लोगों को ही नौकरी देते हैं। उनके यहां रिक्तियों और अवसरों की जानकारी भी सामान्य व्यक्ति को नहीं मिलती। भटक करके अनेक नौजवान कुंठा, अवसाद और अपराध की शरण में चले जाते हैं।

स्वतंत्रता-फिर एक छलावा! धर्म की स्वतंत्रता, पंडित और कठमुल्ले तो अपनी ही तरह से धर्म की व्याख्या करते हैं। इन्सानियत और मानवता का सही रास्ता ढूंढने की तो वह आज़ादी ही नहीं देते। धार्मिकता तो अब बड़ी-बड़ी मजलिसों, गुरूओं और बाबाओं के दरबार में कैद है। आदमी और औरतें अच्छे से अच्छा फैशन कर इन महफिलों में जाते हैं और मुक्ति का रास्ता खोजते हैं। समता तो अब हो ही नहीं सकती। चिंतकों और विद्वानों ने तो समता के विचार को ही तिलांजलि दे दी है। महात्मा बुद्ध, कबीर साहेब, कार्ल मार्क्स और ज्योतिबा फूले, गुरु रविदास ने जो समता की वकालत की थी अब तो लोग उसका मूल आधार भी स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। पूंजीवाद और नव-पूंजीवाद के वरद प्राप्त शीर्ष व्यक्ति इन्द्र और उनके दरबारी देवताओं के बराबर हैं एवं साधारण इंसान ज़मीन पर रेंगते हुए कीड़ों की तरह। हमारे नेताओं ने बात की थी कि गरीब-अमीर के बीच में बहुत अंतर नहीं होना चाहिए। संविधान में भी लिखा है कि राज्य सामाजिक और आर्थिक असमानता समाप्त करने के उपाय करेगा, लेकिन इसके उलट ही हो रहा है। पता नहीं, यह आर्थिक और सामाजिक असमानता कहाँ तक पहुँचेगी। अब तो हीगेल और अन्य विद्वानों का द्वंद्वात्मक विकास का सिद्धान्त भी असत्य सिद्ध हो रहा है। बाबा! इस देश के विद्वानों को जगाओ और उन्हें फिर से नयी सोच पैदा करने की चुनौती दो। बंधुत्व-भाईचारे का सिद्धान्त तार-तार हो रहा है। हिंदू-मुसलमान आपस में लड़ रहे है, सिक्ख और इसाई लड़ रहे हैं, दंगे हो रहे हैं, कत्ल-ए-आम हो रहे हैं, इसांन और इसांनियत कुचली जा रही है। जाति-संघर्ष और जाति-चेतना तो अधोगति की गर्त में पहुँच गये हैं। अब सब कुछ जाति के आधार पर हो रहा है वोट तो केवल जाति के आधार पर। फिर कैसे अच्छे आदमियों को बाहर लायें जो हमें सही नेतृत्व प्रदान करें? कब भाईचारे के सिद्धान्त से हम देश और समाज को एक परिवार के रूप में बदल पायेगें और सब एक दूसरे की सहायता कर सुख-दुख बाँटेंगे; कैसे हम इंसानों के दिल में इंसानी प्रेम जागृत कर सभ्य और सुखी बनायें?

बाबा! आपने भारत को जनतंत्र दिया। एक व्यक्ति वोट और उस वोट का बराबर मूल्य; हर व्यक्ति को देश की सर्वोच्च संस्थाओं-असेम्बली और पार्लियामेंन्ट में पहुँचने का अधिकार। किन्तु क्या ऐसा हो पा रहा है? अब तो बिना धनबल, बाहुबल और जातिबल वाले व्यक्ति का चुनाव लड़ना असंभव। राजनीति करने के लिये किसी भी साधन से कमाया हुआ अपार धन होना चाहिये। बिना उसके तो ग्रामप्रधान और वॉर्ड सदस्य का चुनाव भी नहीं लड़ सकते। अच्छा आदमी खड़ा भी हो गया तो उसे पहचानने वाला कोई नहीं। लोग तो केवल जातिवाद, धर्म, शराब और पैसे की सोच पर ही वोट देते हैं। राजनीतिक पार्टियों के शीर्ष नेता चाहे वे दलित और पिछड़े वर्ग में से क्यों न हों सब जन-समस्यायों और विकास की बात न कह सकने वालों को ही टिकट दे कर चुनाव लड़ाते हैं, जिससे वह बंधुआ मजदूर बनकर उनकी सेवा कर सकें और वह उनकी स्थिति और प्रभाव का गलत फायदा उठाते रहें। असेम्बली और पार्लियामेन्ट तो आज धोखाधड़ी और हुड़दंग के अड्डे बन गये हैं। भारतीय जनतंत्र को पटरी पर लाने के लिये अब कुछ खास उपाय ही चाहिये। बाबासाहेब! आपने यह भी कहा था कि राजनीतिक जनतंत्र सामाजिक, पूंजीवाद और भोगवाद के रोगों से बुरी तरह पीड़ित है। देश के नायकों को तो इन चुनौतियों का ध्यान ही नहीं।

सभी राजनैतिक पार्टियों से निराशा ही हाथ लग रही है। उनके संविधान में घोषणाएं तो बहुत आकर्षक और लुभावने, लेकिन वह केवल भेड़िये की खाल और रंगे सियार की तरह हैं। असल मकसद और छिपा हुआ एजेंडा कुछ और ही होते हैं। सबके पीछे सांप्रदायिक, जातिगत और व्यक्तिगत स्वार्थ ही उनके असली चेहरे हैं। बड़े राजनीतिक दलों के आका बात तो समाजवाद और वर्गविहीन, जातिविहीन, गरीबी विहीन एवं शोषणविहीन समाज की करते हैं लेकिन उनके कारनामे और उनकी चाल ठीक उलट है। कैसे इस व्यवस्था को ठीक किया जाये और देश की राजनीति में भाग लेने वाले राजनीतिक दलों के नेताओं की चरित्रहीनता के दलदल से निकाला जाये? आखिर में बाबा! हमें अच्छे, सरल, स्वच्छ और पवित्र जीवन बिताने के लिये एक आदर्श भी चाहिये। वह तुमने ही दिया। आपका कितना पवित्र और सरल जीवन था। सद्गुरू कबीर साहेब के सिद्धान्तों से बचपन में प्रेरणा लेकर समता, बंधुत्व, शील और करूणा के सागर भगवान बुद्ध की शरण में चले गये। आपको तो निर्वाण प्राप्त हो गया। बाबा! हमें भी रास्ता दिखाओ।

बाबा! हमने आपको बहुत मानसिक कष्ट दिया। आपके सामने अपनी दुर्दशा का वर्णन किया, आपके सामने ऐसी चुनौतियाँ रख दीं जिनका समाधान हमारी तो समझ में नहीं आ रहा है; हमारे देश के नेता, विचारक और दार्शनिक भी दिग्भ्रमित हैं और देश को अंधकार की ओर लिए चले जा रहे हैं। बाबा! तुम ही आओ, रोशनी दिखाओ और भारतीय समाज और मानव को विकास और मुक्ति का रास्ता बताओ।

(लेखक रिटायर्ड आई.ए.एस. हैं व भारत सरकार में सचिव रह चुके हैं)

सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका *'सामाजिक न्याय संदेश'* का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुंचाने में सामाजिक न्याय संदेश की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन तथा फाउन्डेशन के कार्यक्रमों एवं योजनाओं को आम नागरिकों तक पहुंचाने का काम बखूबी कर रहा है।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपना योगदान दे सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने मित्रों को भी सदस्य बनाईए, पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए एक वर्ष के लिए रू. 100/-, दो वर्ष के लिए रू. 180/-, तीन वर्ष के लिए रू. 250/-, का डिमांड ड्राफ्ट, अथवा मनीऑर्डर जो 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम देय हो, फाउन्डेशन के पते पर भेजें या फाउन्डेशन के कार्यालय में नकद जमा करें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा।

- सम्पादक

मासिक पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश सदस्यता कूपन

मैं, डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का ग्राहक बनना चाहता /चाहती हूँ/

शुल्कः वार्षिक सदस्यता शुल्क रू. 100/-, **द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 180/-, **त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 250/-।

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

मनीऑर्डर/ डिमांड ड्राफ्ट नम्बर..दिनांक.......................संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....पिन ....

फोन/मोबाईल न....................................ई.मेलः ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित निम्न पते पर भेजिए :

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन

15 जनपथ, नई दिल्ली-110 001 फोन न. 011-233576235, 23320588, 23320589

THE CONSTITUTION OF INDIA

WE, **THE PEOPLE OF INDIA,** having solemnly resolved to constitute India into a **SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC** and to secure to all its citizens:

JUSTICE, social, economic and political;

LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship;

EQUALITY of status and of opportunity; and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation;

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do **HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.**

RNI No. DELHIN/2002/9036

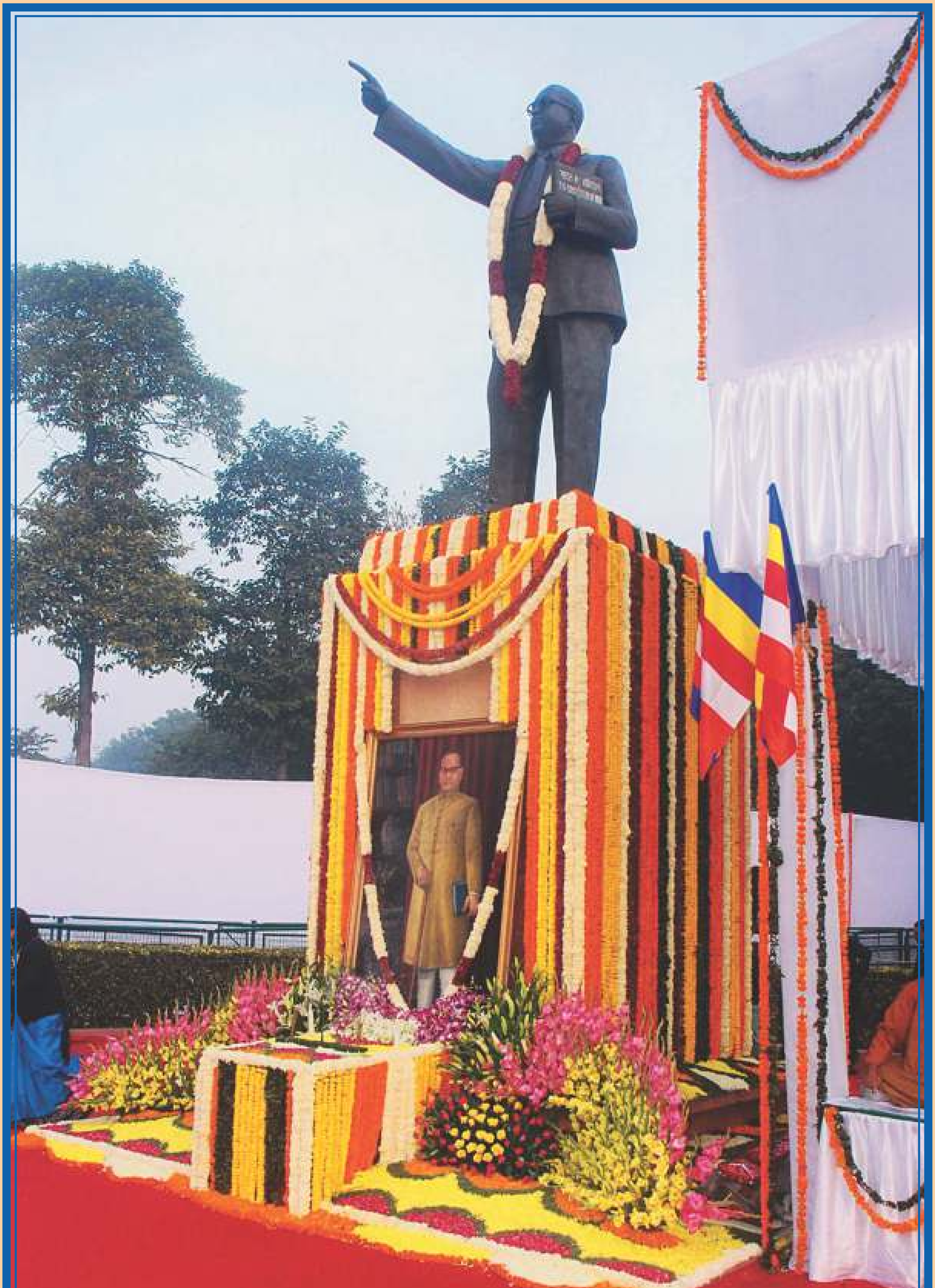

प्रकाशक व मुद्रक **विनय कुमार पॉल,** द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-1, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली – 110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : **सुधीर हिलसायन**